गायत्री मंत्र

लेखक: -
पंडित अमरनाथ क
ग्वालिय

प्राक्कथन

गत वर्ष के प्रारंभ में मैंने शापकीलित और गायत्री मंत्र के विषय में विचारों का संग्रह करने और उन को लेख बद्ध करने की चेष्टा की । उस चेष्टा के फल स्वरूप एक छोटा सा लेख तय्यार हुआ । वह तय्यार करते करते यह इच्छा होने लगी कि इन विचारों को एक पुस्तिका का स्वरूप देकर अपने बच्चों के उपयोग के लिए सुरक्षित किया जाय । इसी अभिप्राय से इस का संपादन किया जा रहा है ।

गायत्री मंत्र पर बहुत साहित्य अब तक बना है इस मंत्र के विषय में जो कुछ अब तक लिखा गया है उस सब का ज्ञान प्राप्त करना मेरे लिए सम्भव नहीं न यह सम्भव है कि मैं इस विषय पर कुछ ऐसे विचार प्रकट करूँ जो आज तक किसी को न सूझे हों । जो कुछ मैं लिख रहा हूँ वह केवल एक संग्रह मात्र है जो कुछ मैंने अपने पूर्वजों और गुरुओं से सुना और यथा सम्भव शास्त्राध्ययन से प्राप्त किया उसी को मैंने संगृहित किया है । कोई आश्चर्य नहीं कि विस्मृति के कारण अथवा सर्वव्यापक अध्ययन न होने अथवा उसकी सामग्री उपलब्ध न होने के कारण इस में त्रुटियाँ और न्यूनतायें हों । मुझे हर्ष होगा यदि वह पूरी की जायें । मैं इस लक्ष्य से नहीं लिख रहा हूँ कि इस पुस्तिका के अन्तर्गत विचारों का प्रचार हो अथवा जिनके लिए मैं लिख रहा हूँ वह इन को सही मान कर उन को अपनायें । मेरा लक्ष्य केवल इतना है कि वह इस को सावधानी से पढ़ लें और जान लें कि मेरे विचार इस विषय में क्या हैं ।

१५ मार्च १९५९

अमर नाथ काक

उपक्रम

गायत्री मंत्र का निर्णय करने से पूर्व कुछ ऐसी बातें बतानी आवश्यक हैं जिनका जानना पाठकों के लिए हितकर होगा । हमारे पूर्वज वह बातें अपने बच्चों को बाल्यावस्था में ही सुनाते जाते थे और उन के दृष्टि कोण का अंग बनाते जाते थे । वह उन के विचारों की पृष्ठ भूमि बन जाती थी । उस प्रथा का ह्रास हुआ है, भौतिकवाद बढ रहा है आस्तिकता कम हो रही है पुरानी मर्यादाओं का लोप हो रहा है, इस लिए उन बातों को लेख बद्ध करना भी आवश्यक होगया है ।

आर्य जाति के निवासस्थान को आर्यावर्त कहते है । आर्यावर्त वह भूभाग है जिस के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व में समुद्र और पश्चिम में समुद्र है । इसी भूभाग में सिन्धु : सिंध : वितस्ता :जेहलम : चन्द्रभागा :चिनाब : रावी वियास सतलुज सरस्वती यमुना गंगा इत्यादि नदियाँ और उनकी शाखायें बहती हैं । इन नदियों में से सरस्वती अब अदृश्य हो गई है । इस भूभाग को आर्य जाति अपनी पुण्य भूमि मानती है । ``आर्यावर्त: पुण्य भूमि मध्ये विन्ध्यहिमालयौ : `` आसमुद्रात्तु वै पूर्वात् आसमुद्राच्च पश्चिमात् तयोरेवान्तरं गिर्यो: आर्यावर्त: विदुर्बुधा: `` । इस भूभाग के अन्तर्गत जहाँ आर्यों ने वेदों का सम्पादन किया उस को ब्रह्मावर्त कहते हैं ब्रह्म शब्द वेद वाचक भी है । आर्यलोग मानते हैं कि वेद अनादि काल से चले आते हैं । ऋषि मंत्रदृष्टा थे अर्थात ऋषियों ने वेद मंत्रो को सुना उन का अनुभव किया उन को सम्पादित किया और उन को स्थाई रूप दिया । वेदों को श्रुति इस लिए कहते है कि ऋषियों ने वेद ऋचाओं को सुना और उन के उत्तराधिकारी ऋषियों से उन ऋचाओं को सुनते रहे । इस प्रकार वेदों का ज्ञान श्रुति परम्परा से चलता रहा ।

वेद चार हैं ।१। ऋग् वेद ।२। यजुर्वेद ।३। सामवेद ।४। अथर्व वेद ।। इन में से पहले तीन मुख्य हैं इस लिए वेदों को त्रयी या वेद त्रितय भी कहते हैं । यजुर्वेद के दो रूप या दो संस्करण हैं । एक को कृष्ण यजुर्वेद कहते हैं दूसरे को शुक्ल यजुर्वेद ।

आर्य जाति चार वर्णों में विभाजित है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के नाम हैं । यह वर्णविभाग ऊँच नीच का द्योतक नहीं । यह तो एक व्यवस्था है । इस विषय पर मतभेद है कि वर्णविभाग जन्म से है अथवा कर्म से । सनातन धर्म के अनुयायी वर्णविभाग जन्म से मानते हैं ``जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेय: संस्कारैर्द्विज उच्यते । विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभि: श्रोत्रिय उच्यते ``।। यदि शास्त्रानुसार विवाहित ब्राह्मण पिता माता के यहाँ पुत्र या पुत्री जन्म ले तो वह जन्म से ब्राह्मण होंगे । जब उनके शास्त्र विहित संस्कार हों तो वह द्विज होंगे । विद्याभ्यास करने से वह विप्र बनेंगे, जिन में तीनों गुण हों वह श्रोत्रिय समझे जावेंगे । इस प्रकार विश्वास किया जाता है कि जन्मत: ही ब्राह्मण होता है ।

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कारणों से एवं समय की गति के साथ साथ ब्राह्मणों में विभिन्नतायें उत्पन्न होती रहीं । जो ब्राह्मण समूह सारस्वती के तटों पर और उस नदी के उत्तर में प्राचीन काल में आबाद हुआ उस समूह का नाम सारस्वत ब्राह्मण पड़ा । इसी भूभाग में पंजाब और काश्मीर संमिलित है उन प्रदेशों में मूलत: रहने वाले ब्राह्मण सारस्वत हैं । जो ब्राह्मण कान्य कुब्ज: कनौज: में और उस के आस पास रहे वह कान्य कुब्ज ब्राह्मण कहलाये इसी प्रकार मिथिला में रहने वाले मैथिल गौड में रहने वाले गौड और उत्कल में रहने वाले औत्कल कहलायें उत्तर भारत में रहने वाले ब्राह्मणों की यही पांच जातियां मुख्य हैं उपजातियां तो अनेक हैं । इन मुख्य जातियों को मिला कर पंचगौड कहते हैं । ``सारस्वता कान्यकुब्जा गौड मैथिल उत्कला । पंचैते ब्राह्मणा गौडा विन्ध्योत्तर निवासिना: दक्षिण भारत अर्थात विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में जो ब्राह्मण आबाद हैं उनको पंच द्रविड कहते हैं । ब्राह्मणों के इन भिन्न समूहों ने उपर्युक्त प्रदेशों में अपनी अपनी विशेष संस्कृति और साहित्य का निर्माण किया । यह ब्राह्मण समूह सीमा बद्ध नहीं रहे और धीरे धीरे अपने प्रारम्भिक निवासों को छोड़ कर भारत के दूसरे भागों में फैल गये परन्तु जहां कहीं भी गये प्रारंभिक विशेषता उन के नाम के साथ रहा ।

चारों वेद सब ब्राह्मणों के लिए प्रामाणिक हैं परन्तु किसी ब्राह्मण समूह ने चारों वेदों का अध्ययन आवश्यक माना और चारों वेदों में दिये हुए [illegible] विधि विधान का पालन करना आवश्यक समझा वह समूह चतुर्वेदी :चौबे: कहलाया । इसी प्रकार तीन वेदों के अनुयायी ब्राह्मण त्रिवेदी कहलाये और दो वेदों के अनुयायी व्दिवेदी :दुबे: कहलाये । जो केवल एक वेद के अनुयायी बने उन को ॠग्वेदी या यजुर्वेदी कहने लगे । यजुर्वेद के दो प्रकार या संस्करण हैं कोई कृष्ण यजुर्वेदी बना और कोई शुक्ल यजुर्वेदी । इस प्रकार वेदाधारित विभाजन के अनुरूप उन की अलग अलग शाखाओं और सूत्रों की रचना हुई । इस के फल स्वरूप ब्राह्मण वर्ग अनेक शाखाओं उपशाखाओं उपउपशाखाओं में विभाजित हुआ । इस वर्गीकरण के अनुसार काश्मीरी पंडित सारस्वत ब्राह्मण हैं । कृष्ण यजुर्वेदीय हैं । उन की शाखा का नाम = चारायणीय या कठ शाखा है उन के सूत्र का नाम लौगाक्षि सूत्र है उस की टीका देवपाल ने की है यह सूत्र देवपाल के नाम से विख्यात है ।।

इस प्रकार निवासस्थानाधारित वेदाधारित शाखासूत्राधारित तथा अन्यान्य कारणों से उत्पन्न हुई विभिन्नताओं के होते हुए भी ब्राह्मणों के मौलिक सिद्धान्त एक ही हैं उन के मुख्य कर्तव्यों में कोई विशेष भिन्नता नहीं । परिपाटी में विभिन्नता जरूर है । इतिकर्तव्यता में भी विभेद है । रीतिरिवाज में विभेद है । परन्तु यदि गहरी दृष्टि से विवेचन किया जाय तो कोई सैद्धान्तिक अन्तर नहीं मिलेगा ।

उपनयन संस्कार ब्राह्मण बालक के लिए अनिवार्य है उसी से वह व्दिज बन जाता है । व्दिज बन कर उस का कर्तव्य है कि वह वेद पढे उस में योग्यता प्राप्त करके स्वयं उस का अध्ययन करता रहे और दूसरों को पढाता रहे । स्वयं यज्ञ करे और दूसरों को यज्ञ कराता रहे । दान दे और ~~दूसरों को यज्ञ कराता~~ दान ले ``अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ''। ब्राह्मण का चरित्र खान पान व्यवहार विचार रहन सहन शरीर तथा मन शुद्ध, स्वच्छ निर्मल नियमित और नियंत्रित होना चाहिये तब ही वह ब्राह्मणत्व को कायम रख सकता है । ``शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् । यह ब्राह्मण के स्वभावज नव लक्षण हैं अर्थात इन्ही नव लक्षणों का नाम

ब्राह्मणत्व है । जिस ब्राह्मण में यह नव लक्षण है वह ब्राह्मण है जिस में नहीं वह जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं । वह नव लक्षण हैं :१: शम :२: दम :३: तप :४: शौच :५: क्षान्ति :६: आर्जव :७: ज्ञान :८: विज्ञान :९: आस्तिकता । :१: ब्राह्मण को शम होना चाहिये अर्थात उस का अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त शान्त होना चाहिये :२: उस को दम होना चाहिये अर्थात पाँच कर्मेन्द्रियों पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन को अपने काबू में रखना चाहिये । :३: ब्राह्मण को तपस्वी होना चाहिये । एकान्त सेवन करना विजन देशों में रहना पाठ पूजा जप आसन ध्यान धारणा समाधि इत्यादि कर्म ही केवल तपस्या नहीं । इन कर्मों को कोई करे या न करे इन में से कोई कर्म अनिवार्य नहीं यदि इन का पालन करने से कोई व्यक्ति अकर्मण्य होजाय तो यह कर्म त्याज्य हैं । तपस्या का तात्पर्य नियंत्रण और नियमन है अपनी शारीरिक चेष्टाओं अपनी मानसिक वृत्तियों अपने सारे जीवन को नियन्त्रित और नियमित रखना ही तपस्या है । अपने सारे जीवन को अपने आचार विचार आहार विहार बोलचाल और व्यवहार को नियंत्रित और नियमित करना ब्राह्मण का परम कर्तव्य है यही वास्तविक तपस्या है । :४: ब्राह्मण के लिए शौच का पालन करना भी आवश्यक है । ``सत्यं शौचं मनः शौचं शौचमिन्द्रिय निग्रहः । सर्वभूत दया शौचं जल शौचं तु पंचमम् ॥ शौच के पाँच चरण अर्थात अंग है मुख्य अंग सत्य है सच बोलना शौच पालन करने वाले का मुख्य कर्म है । ब्राह्मण सत्यवादी नहीं तो वह कदाचित शुद्ध नहीं हो सकता । इस प्रकार मन की शुद्धताई शौच का दूसरा अंग है । मन की शुद्धताई का अर्थ यह है कि मन में अशुद्ध विचार भावना वासना इच्छा या संकल्प कदाचित् उत्पन्न नहीं हो । इसी प्रकार इन्द्रिय निग्रह भी शौच का एक अंग है अर्थात ब्राह्मण को अपने कर्मेन्द्रियों ज्ञानेन्द्रियों और मन को अपने काबु में रखना चाहिए । सब प्राणियों पर दया करना भी शौच का एक अंग है । पानी इत्यादि से अपने शरीर अपने वस्त्रादि अपने घर अपने पडोस का साफ सुथरा रखना शौच का पाँचवा अंग है ।

ब्राह्मण का पाँचवा लक्षण क्षान्ति सहन शीलता है । छटा लक्षण आर्जव है अर्थात उस में किसी प्रकार की कुटिलता नहीं होनी चाहिए ज्ञान और

विज्ञान अर्थात लौकिक विद्याओं और आध्यात्मिक विद्या के प्राप्त करने में सदैव तत्पर रहना ब्राह्मण के कर्मों के अंग है । आस्तिक्य अर्थात परमात्मा और वेदाधारित धर्म में विश्वास रखना भी ब्राह्मण का मुख्य लक्षण है । अन्न पानादि का शौच भी आवश्यक है ।

उपर्युक्त लक्षणों से अलंकृत ब्राह्मण गायत्री की उपासना और गायत्री मंत्र के जप का अधिकारी है ।

उपर्युक्त प्रकारों से विभाजित ब्राह्मण वर्ग में गोत्रों और प्रवरों की भिन्नता है । विश्वास किया जाता है कि ब्राह्मण वेदर्षियों की सन्तति है वेदर्षि ही गोत्र प्रवर्तक है । जिस ऋषि के नाम पर जिस कुल का गोत्र है उसी ऋषी की सन्तान वह कुल है । काश्मीरी ब्राह्मण भी कई गोत्रों के है उन में से मुख्य गोत्र प्रवर्तक दत्तात्री, भरव्दाज, गौतम मुद्गल कौशिक लौगाक्ष्य उपमन्यु हैं ।

साधारणतया एक ब्राह्मण के लिए सोलह संस्कार किये जाने का विधान है । :१: गर्भादान :२: पुंसवन :३: सीमन्त :४: जातकर्म :५:नाम करण :६: निष्क्रम :७: अन्नप्राशन :८: उपनक्रिया :९: कर्णभेद :१०: व्रतादेश :११: वेदारम्भ :१२: केशान्त :१३: स्नान :१४: उद्वाह :१५: विवाहाग्नि परिग्रह :१६: त्रेताग्नि संग्रह ।

इन सोलह में से अन्तिम तीन काश्मीरी ब्राह्मणों में भी यथा समय होते है । उद्वाह और विवाह संस्कार परिणय :विवाह: के अवसर पर होते है र त्रेताग्निसंग्रह देहावसान पर अन्तेष्टि के समय होता है । इन सोलह में से शेष तेरह के बदले काश्मीरी ब्राह्मण बालक के चौबीस संस्कार होते है । उन के नाम :१: वीज्वापन :२: सीमान्त :३: पुंसवन :४: जातकरण :५: नामकरण :६: सूर्य दर्शन :७: चन्द्र दर्शन :८: अन्न प्राशन :९: चूड़ाकरण :१०: उपनयन :११: त्रैविद्यक :१२: उपाकर्म :१३: चातुर्होतृक :१४: चातुर्होतृकापवर्ग :१५: प्रवर्ग्य :१६: प्रवर्ग्यव्रतापवर्ग :१७: अरुणव्रत :१८: अरुणव्रतापवर्ग :१९: औपनिषद् व्रत :२०: श्रीकाम :२१: यशस्काम :२२: औपनिषद्व्रतापवर्ग :२३: गोदान :२४: त्रैविद्यकापवर्ग ।

भारतीय संस्कार विधि और काश्मीरी संस्कार विधि में अधिक अंतर नहीं । नाम भेद ही ज्यादा है । गर्भाधान और दीक्षापन समानार्थी हैं । पुंसवन सीमान्त जातकरण नामकरण और अन्नप्राशन भी दोनों विधियों में सामान्य है । भारतीय विधि का निष्क्रम संस्कार जन्म लेने से चौथे मास में जब शिशु को बाहर खुली हवा में ले आते है तो किया जाता है । सूर्य दर्शन और चन्द्र दर्शन संस्कार उसी के समीपवर्ती है । प्रयोजन दोनों विधियों का एक ही है । भारतीय विधि का उपनक्रिया संस्कार और काश्मीरी विधि का चूडाकरण संस्कार पर्याय वाची है । काश्मीरी विधि में कर्ण भेद संस्कार अर्थात कान छेदने का संस्कार नहीं जो भारतीय विधि में है । यह एक विलक्षणता है । अनुमान हो सकता है कि काश्मीरी ब्राह्मण कान छेदने को महत्वपूर्ण नहीं मानते थे । भारतीय क्रम का वेदारम्भ काश्मीरी क्रम के उपनयन संस्कार में संमिलित है । भारतीय क्रम का वेदान्त और काश्मीरी क्रम का गोदान पर्यायवाची है । भारतीय क्रम में तीन वेदों और उपनिषदों के अध्ययन आरम्भ करने और समाप्त करने के संस्कारों का कोई उल्लेख नहीं । काश्मीरी क्रम में इन के लिये अलग अलग संस्कार प्रदर्शित हैं यह दूसरी विलक्षणता है ।

काश्मीरी ब्राह्मणों के लिए चौबीस संस्कारों का विधान है परन्तु इन में से अधिकांश का लोप हो गया है जो कुछ रहा है वह भी एक रीतिमात्र रह गया है । इन में से पहले तीन संस्कार :१: दीक्षापन जब गर्भ का आरम्भ हो :२: पुंसवन और सीमान्त जब बच्चा अभी गर्भ में ही हो होने चाहिये । उस समय होते नहीं । :४: जातकरण :५: नामकरणसंस्कार बच्चे के जन्म लेने का दस दिन का सूतक समाप्त होने पर ग्यारहवे दिन होने चाहिये । इन संस्कारों द्वारा बच्चे के प्रसूत का संशोधन होता है और बच्चे को उपयुक्त नाम दिया जाता है । प्रायशः ग्यारहवें दिन अथवा उस के कुछ समय बाद यह संस्कार होते है । जब बच्चा तीन चार मास का हो जाय और चन्द्रमा तथा सूर्य के दर्शन करना उस के लिए उपयुक्त और हितकार हो तो बच्चे के :६: सूर्य दर्शन और :७: चन्द्र दर्शन संस्कार होने चाहिये । उस समय अथवा कभी अलग संस्कारों के रूप में नहीं होते । जब बच्चा छे सात मास की आयु का हो जाय तो :८: अन्न

प्राशन संस्कार होना चाहिये यही [illegible] बच्चे के लिए अन्न खिलाने की होती है । बच्चे को अन्न तो खिलाते हैं परन्तु संस्कार नहीं होता । जब बच्चा तीन वर्ष का हो जाय तो :६: चूडा करण संस्कार होना चाहिए चूडा करण या उस क्रिया बाल काटने को कहते हैं । यह संस्कार पहले बड़े समारोह से सब करते थे अब कोई कोई करता है । दसवाँ संस्कार उपनयन संस्कार है । इस को मेखला संस्कार यज्ञोपवीत संस्कार और मौंजी बन्धन भी कहते हैं । यह संस्कार ब्राह्मण बालक के लिए अनिवार्य है । इसी से वह द्विज या द्विजन्मा बनता है । जब कोई ब्राह्मण बालक जन्म से गिन कर सात वर्ष की आयु का अथवा गर्भाधान से आठ वर्ष का हो जाय तो उसका उपनयन संस्कार होना चाहिए । और हर हालत में उस के आयु का सोलहवाँ वर्ष समाप्त होने से पहले होना चाहिए । ब्राह्मणों के स्वर्ण युग में यह सब संस्कार यथा विधि होते थे यथासमय होते थे । जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह संस्कार निर्धारित हुए हैं उस की पूर्ति होती थी । वह युग बदल गया । ब्राह्मणों को एक विकट परिस्थिति में से गुजरना पड़ा । वह उन के लिए सर्वनाश का युग था । उस युग में वह बहुत कुछ खो बैठे । उस सब का विनाश कोई आश्चर्य की बात नहीं । आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मणों में से थोड़े से किस तरह उस आपत्काल से बच निकले और संस्कृति और साहित्य में से किस तरह थोड़ा सा अंश बचासके । उस आपत्काल में इन संस्कारों का सम्पादन ही असम्भव हो गया था यथाविधि यथासम्भव सम्पादन करना दूर रहा । निष्पक्ष ऐतिहासिकों ने उस आपत्काल की विकट परिस्थितियों का निरूपण अपने इतिहास ग्रंथों में किया है । काश्मीरी ब्राह्मण के लिए यह कहना भी भयप्रद था कि मैं ब्राह्मण हूँ पग पग पर यही घोष होता था कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ । ``न भट्टोहं न भट्टोहमित्याभाषि पदे पदे ``। ऐसे वातावरण में एक ब्राह्मण बालक के चौबीस संस्कार यथा समय और यथाविधि कैसे हो सकते थे । यज्ञोपवीत संस्कार जिस को तत्कालीन शासकों की भाषा में जुनारबन्दी कहाजाता था कुफर का पहला सोपान माना जाता था । इस लिए इस संस्कार को रोकने और दबाने का प्रयत्न बहुत जोरों से किया जाता था । न वेदाध्ययन सम्भव

था न गुरुकुल मर्यादा ही बन सकी थी । कहा जाता है कि उस समय शंख बजाना भी दंडनीय था । उस आपत्काल में कहा जाता है कि ब्राह्मण अपने मकानों के तलघर में सारे दरवाजे और किवाड़ बन्द करके छुप के छुपके उपनयन संस्कार करते रहे थे ताकि शासकों को पता न लगे । चूंकि यथासमय कोई संस्कार उस वातावरण में नहीं हो सकता था उपनयन संस्कार के अवसर पर ही यह चौबीसों संस्कार सम्पादित करने की प्रथा चल पड़ी । अभिप्राय यह था कि कम से कम उपनयन संस्कार बालक का हो जाय जिस से वह द्विज बन सके । नाममात्र के लिए उसी दिन अन्य संस्कार भी हो जाये । वह आपत्काल चिरस्थाई रहा इस लिए यह प्रथा भी चिरस्थाई हो गई । आपत्काल समाप्त होने के बाद भी ब्राह्मणों का स्वर्णयुग लौट कर नहीं आया । आपत्काल की प्रथा चलती रही । अब तक वही प्रथा प्रचलित है । अब यह होता है कि उपनयन संस्कार के अवसर पर उस के पूर्वगत सब संस्कार : उन में से कोई पहले किया गया हो या नहीं : सब के सब किये जाते हैं । उसी अवसर पर उपनयन संस्कार के अनुगत चौदह संस्कार भी किये जाते हैं । यह चौबीस संस्कार एक ही दिन में अथवा कदाचित दो दिनों में समाप्त हो जाते हैं । बालक समझे या न समझे यज्ञों व्दारा वह सब व्रत धारण करता है और समाप्त करता है । जिसके लिए चौबीस वर्ष के ब्रह्मचर्य गुरुकुल निवास और वेदाध्ययन की आवश्यकता है चारों वेदों समस्त वेदांगों और उपनिषदों का अध्ययन समाप्त करने की आवश्यकता है व्रतों को वास्तविक रूप से धारण करके उस की अवधि को व्यतीत करके नहीं वेदों विद्याओं और उपनिषदों का अध्ययन समाप्त करके नहीं प्रत्युत अग्निकुंड में आहुतियां देकर यह सब व्रत समाप्त करता है । इस का मुख्य उद्देश तो उपनयन संस्कार ही मानना चाहिए ।।

उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार ही एक ब्राह्मण को द्विज अर्थात व्दिजन्मा बनाता है । एक ब्राह्मण बालक अपने स्थूल शरीर की दृष्टि से अपने पिता माता से जन्म लेता है वह उस का भौतिक जन्म है । उपनयन संस्कार से ही उसका आध्यात्मिक

जन्म आरम्भ होता है। वह अपने गुरु से उपनयन संस्कार व्दारा आध्यात्मिक विधा का अध्ययन आरंम्भ करता है गायत्री मंत्र का उपदेश लेकर जगदम्बा गायत्री को अपना उपास्य देवता बनाता है। इस संस्कार व्दारा जगदम्बा महागायत्री उस के आध्यात्मिक जन्म के लिए उसकी माता बनती है। यह उसके दूसरे जन्म :आध्यात्मिक: का आरम्भ है। इस लिए उस को तदनन्तर व्दिज या व्दिजन्मा कहते हैं।

इस संस्कार को इस लिए उपनयन संस्कार कहते हैं कि इस संस्कार व्दारा एक बटु :ब्राह्मण बालक: मंत्रोपदेश के लिए, विधारम्भ के लिए, वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने गुरु के समीप जाता है और अपने गुरु से यह सब बातें प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। उपनयन शब्द का अर्थ उप समीपं : नजदीक : नयनं गमनं : जाना : है। नजदीक जाना शब्दों का तात्पर्य यह है कि इस संस्कार के अवसर पर बटु अपने गुरु के पास उपर्युक्त बातें प्राप्त करने के लिए जाता है इसी लिए इस को उपनयन कहते है। इस संस्कार को मेखला इस लिए कहते हैं कि इस संस्कार व्दारा बालक कटि सूत्र और कौपीन धारण करता है मेखला शब्द का अर्थ कटि सूत्र है। मौंजी बंधन इस संस्कार का नाम इस लिए पडा है कि इस संस्कार व्दारा बालक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने एवं शिक्षा प्राप्त करने और उस को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। उस प्रतिज्ञा को कार्यान्वित करके संकेत स्वरूप मूंजी की बनी हुई रस्सी अपनी कटि पर बांधता है। इस को यज्ञोपवीत संस्कार इस लिए कहते हैं कि इसी अवसर पर बटु को यज्ञोपवीत : जन्यू : धारण कराया जाता है। जन्यू सूत्र में तीन लडियों का बना हुआ होता है। इन तीनों लडियों को मिलाने के लिए इस में एक ग्रन्थि लगी होती है उस को ब्रह्म ग्रन्थि कहते हैं। इस लिए जन्यू को ब्रह्म सूत्र भी कहते हैं। ब्रह्म सूत्र या यज्ञोपवीत यह नाम और ब्रह्म ग्रन्थि वाला तीन लडियों का जन्यू इस बात का संकेत है कि मनुष्य जो इस सूत्र को धारण करता है ब्रह्म परमात्मा का अंश है और इस सूत्र के धारण करने का उद्देश्य यह है कि धारण करने वाला अध्यात्म विधा : ब्रह्म ज्ञान : प्राप्त करके ब्रह्म : परमात्मा : में लय हो जाय। उस उद्देश्य को प्राप्त

करने के साधन क्या है उन का भी यह ब्रह्मसूत्र एक संकेत है। यही ब्रह्म ज्ञान ब्राह्मण के जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधनों को एक क्षण कदापि न भूले इस लिए उस के लिए यज्ञोपवीत को सदैव और निरन्तर धारण करते रहना अनिवार्य और आवश्यक है। सूत्र सूत के धागे को कहते हैं। इस का दूसरा अर्थ ``स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ``। एक अर्थ गर्भित थोडे से अक्षरों में बन्धा हुआ वाक्य सूत्र कहलाता है। यज्ञोपवीत या ब्रह्म सूत्र गायत्री मंत्र का ही संकेत है और गायत्री मंत्र भी इन्ही अर्थों में ब्रह्म को जानने के लिए एक सूत्र है। ``शिखा सूत्रवान ब्राह्मणः `` ब्राह्मण के लिए सदैव शिखा और ब्रह्म सूत्र धारण किये रखना अनिवार्य है। यज्ञोपवीत इस को इस लिए कहते हैं कि यह यज्ञ के उप समीपे। नजदीक। वीत ले जाने वाला है। यज्ञ परमात्मा का नाम है। यज्ञ विष्णु को कहते हैं। ``यज्ञाख्यः परमात्मा`` ``विष्णुर्वै यज्ञः ``ब्रह्म परमात्मा और विष्णु पर्याय वाची शब्द है। इस प्रकार यज्ञ भी उसी सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का एक नाम है। अतः यज्ञोपवीत : यज्ञ उप वीत : यज्ञ परमात्मा के समीप पहुंचाने का स्मारक और मार्ग प्रदर्शक है। इस की तीन लडियां होती हैं और वह ब्रह्म ग्रन्थि से जुडी होती हैं। ब्रह्म वेद को भी कहते हैं। यह सारा विश्व प्रमाता प्रमाण प्रमेय रूप से विद्यमान है। यही तीन लडियां हैं। वह तीनों ब्रह्मस्वरूप हैं। यही ब्रह्मग्रन्थि का तात्पर्य है। कभी ब्राह्मण वेद प्रदर्शित और गुरुप्रदर्शित मार्ग को न भूल जाय सदैव उस पथ पर चलता रहे इस प्रतिज्ञा का स्मारक यह यज्ञोपवीत सदैव धारण करना ब्राह्मण का कर्तव्य है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में तीन लडियों का यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। विवाह संस्कार के अवसर पर छे लडियों का यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से विवाह संस्कार से पति और पत्नी में ऐकात्म्य उत्पन्न होता है। यह दोनों एक ही सूत्र में बान्धे जाते हैं। वर की तीन लडियां और वधू की तीन लडियां ब्रह्मग्रन्थि व्दारा जुड जाती हैं। अर्थात एक ही ब्रह्म स्वरूप के दो कलेवर बनकर कर्तव्य पालन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

तीन लडियों का यज्ञोपवीत तीन वेदों ऋक,साम,और यजु का चिह्न है और ब्रह्म ग्रन्थि से इन तीन लडियों का जुड़ा हुआ होना इस बात का द्योतक है कि तीन वेद ब्रह्म विद्या और ब्रह्म प्राप्ति के साधन हैं । `` यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके । तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ``।। गायत्री मंत्र के तीन चरण :पद: है जो ब्रह्म वाचक हैं इन तीन चरणों और उन के ब्रह्म वाचक होने का चिह्न भी यह यज्ञोपवीत है । इस प्रकार की अनेक परिस्थितियों और घटनाओं का परिचायक यह यज्ञोपवीत हैं ।

यज्ञोपवीत का वर्णन इस प्रकार किया गया है ``यज्ञोपवीतं परमं पवित्रंप्रजापतेर्यत्सहजं पुरास्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।। यज्ञोपवीत परम पवित्र है जो इस को धारण करे उस को पवित्र बनाता है उस को दीर्घायु प्रदान करता है । उस को बल और तेज प्रदान करता है इत्यादि ।

इस उपनयन संस्कार में गुरु बटु को शिक्षा देता है ब्रह्मचारी को बताता है कि उस का कर्तव्य क्या है । आचार के किन किन नियमों का पालन उसे करना चाहिए । उस के नित्य और नैमित्तिक कर्म क्या है । सन्ध्योपासना अर्थात प्रातःकाल सायंकाल और मध्याह्न के समय उपासना करना उस का मुख्य नित्य कर्म है । ``यावज्जीवं अग्निहोत्रं जुहयात् सन्ध्यामुपासीत ``। जब तक जीवित रहोगे अग्निहोत्र करते रहो और सन्ध्योपासना करते रहो यह आदेश उस को दिया जाता है । सन्ध्योपासना का मुख्य अंग गायत्री मंत्र जप है ।सन्ध्योपासना में गायत्री मंत्र जप का विधान है गायत्री का ध्यान करके गायत्री मंत्र यथावकाश दस बार सौ बार या हजार बार पढा जाता है इसी को जप कहते है । मंत्र को बार बार पढना ही जप का अभिप्राय नहीं और गायत्री की आकृति का चिन्तन करना ही ध्यान का तात्पर्य नहीं । `` जपस्तदर्थ भावनम् ``जप का तात्पर्य मंत्र के अर्थ का मनन करना है । ``ध्यानंध्येयाकारावृत्ति ``ध्यान का प्रयोजन यह है कि उपासक अपनी मनोवृत्ति को उपास्य तत्व का आकार बनावे अर्थात ध्यान करने से उपासक की मनोवृत्ति ध्येयाकार बन जाय । मंत्र गायत्री का

वास्तविक स्वरूप क्या है गायत्री मंत्र का अर्थ क्या है ध्यान और जप की सफलता के लिये यह बातें जाननी आवश्यक हैं ।

गायत्री का स्वरूप

``न गायत्र्या परं जप्यं ``गायत्री से बढकर कोई दूसरा जप्य नहीं । व्दिज के लिए गायत्री का ध्यान करना गायत्री मंत्र का जप करना सर्व श्रेष्ठ नित्यकर्म है । इस नित्यकर्म के लक्ष्य का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम यह जानना जरूरी है कि इस ध्येय तत्व का नाम गायत्री क्यों पडा । परम तत्व का स्वरूप क्या है इस का वर्णन करना असम्भव है ``न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक् न मनो न विद्मः न विजानीमः ``। परम तत्व जिसको निर्गुण ब्रह्म कहते हैं जिस को अनुत्तर परमशिव कहते हैं जो स्वयंप्रकाश सत् चित् आनन्दघन है इन्द्रिय गोचर नहीं न आंखे उस को देखने का सामर्थ्य रखती हैं न वाक् उस का वर्णन कर सकती है न मन उस का चिन्तन कर सकता है वह कर्मेन्द्रियों ज्ञानेन्द्रियों और अन्तः करण का विषय नहीं बन सकता । इन्द्रियां और अन्तः करण परिमित हैं महूदद हैं केवल परिमित वस्तु ही उन का विषय बन सकता है । परमात्मा अपरिमित है ``क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म को इन्द्रियों और अन्तःकरण का विषय बनाना कठिन है । उस को जानने का एक मात्र साधन उस की शक्ति का अनुभव करना है ``शैवीमुखमिहोच्यते शक्ति के अनुभव व्दारा ही शिव का साक्षात्कार हो सकता है । ``शक्ति शक्तिमतोरभेदम् शक्ति और शक्ति मान में भेद नही उन का अभेद उन की अभिन्नता ही है ``वह्नेर्दाहिकता इव ``जिस प्रकार अग्नि से उस की दाहक शक्ति उस की जलाने की शक्ति गर्म करने की शक्ति और प्रकाशन शक्ति अभिन्न है अग्नि इन शक्तियों के अनुभव करने से ही जाना जा सकता है इसी प्रकार अनुत्तर शिव इन्द्रिय गोचर न होते हुए परा शक्ति के अनुभव व्दारा ही जाना जा सकता है । उस पराशक्ति का नाम गायत्री है ``गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृतः `` ``गायन्तं शब्दयन्तं त्रायते रक्षति इति गायत्री ``गायत्री नाम इस लिए पराशक्ति वाचक है कि जो गायत्री का मंत्र पढे उस मंत्र का मनन करे तदाकार अपनी मनोवृत्ति बनावे उस की रक्षा करने वाली शक्ति गायत्री है ।

किसी अक्षर या अक्षर समूह को मंत्र इस लिए कहते है ``मननात् त्रायते इति मंत्र शब्दार्थ : ``जिस अक्षर या अक्षर समूह का मनन करने से रक्षा होती है उस को मंत्र कहते है । त्राण अर्थात रक्षा का अभिप्राय यह है कि किसी प्रकार का भय नहीं रहता । मैं मर जाऊंगा मुझे दूसरा मारेगा मेरी वस्तुओं का नाश होगा मेरे संबन्धियों का नाश होगा इत्यादि इस प्रकार की भावनायें और आशंकायें मनुष्य के लिए भयप्रद होती हैं । अहं और मम मैं और मेरा इस प्रकार की भावना से काम क्रोध लोभ मोह आलस्य कायरता इत्यादि उत्पन्न होते हैं । इन भावनाओं से ही भय होता है । यहीं आध्यात्म उन्नति के शत्रु हैं । गायत्री इन शत्रुओं का उन्मूलन करके अभय प्रदान करती है इसलिए उस को गायत्री कहते हैं । ``गायन्तं शब्दयन्तं सर्वात्मकोहमेवास्मि ``यह भावना धारण करना ही गायन्तं शब्द का तात्पर्य है । मैं ही सारे विश्व की आत्मा हूं । मैं ही विश्व :जगत: रूप से प्रगट हुआ हूं इस भावना को पूर्णाहन्ता परामर्श कहते हैं । इसी पूर्णाहन्ता परामर्श की धारणा को दृढ करना ही गायन्तं शब्द का अर्थ है । ऐसी मानसिक वृत्ति उत्पन्न होने से अविद्या अज्ञान और व्दैत बुद्धि का नाश होता है ``अहं त्वं ``मैं और तुम ``अहं मम ``मैं और मेरा ``स:तस्य वह और उस का यह अहन्ता और ममता की भावनायें ही दुख: और भय की मूल कारण हैं । पूर्णाहन्ता परामर्श से अर्थात इस भावना से कि मैं ही परिपूर्ण सर्वव्यापी पराशक्ति स्वरूप हूं सारा विश्व मेरा ही स्वरूप है,कोई वस्तु और प्राणि मुझ से अलग नहीं,मैं अजर और अमर हूं,मैं अविनाशी हूं,कोई दुख: और भय नही रह सकता ``जब अपने से कोई अलग नही तो अपना और मेरा वह और उसका दूसरा और पराया मित्र और शत्रु यह भिन्नतायें और भेद भावनायें कैसे हो सकती हैं । यह पूर्णाहन्ता परामर्श दृढ होने पर मनुष्य सारा व्यवहार कर्तव्य मान कर करता हुआ स्वयं अलिप्त रहता है । राग और व्देष से रंजित नही होता । कर्म करता रहता है परन्तु उस के फल से अप्रभावित होता है ``सुख दु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततोयुद्धाय युजस्व ``वह सुख और दुख: लाभ और हानि जीत और हार को एक जैसा मान कर उस से उव्दिग्न न होकर उस की स्पृह न करके जीवन संग्राम से डरता नही । उस से भागता

नही बल्कि सदैव अपना कर्तव्य मान कर उस संग्राम को लडता रहता है । ऐसी धारणा जिस परा शक्ति के जप और ध्यान से उत्पन्न होती है उस को गायत्री कहते हैं ।

``गायान् प्राणान् त्रायते इति गायत्री ``जो परा शक्ति प्राणों की रक्षा करती है उस को गायत्री कहते हैं । ``प्राण धारिणी प्राणन स्वरूपाशक्ति: प्रथमं प्राण स्वरूपेण अवतरित था सा एव गायत्री `` प्राण धारण करने वाली प्राणन स्वरूपा शक्ति जिस ने सर्व प्रथम प्राण स्वरूप से अवतार लिया उस का नाम गायत्री है । ``प्राक् संवित् प्राणे परिणत: ``सृष्टि के आध में संवित् शक्ति प्राण में परिणत हुई । ``प्राणो वै गायास्तांस्त्रे तद् यद् गायांस्त्रै तस्मात् गायत्री तत्रे त्रायते ``जो पराशक्ति विश्व की प्राण है अर्थात जो विश्व का जीवन है उस को जो ... करे वह अमरत्व प्राप्त करता है इस लिए उस चैतन्य शक्ति का नाम गायत्री है । उपर्युक्त विवरण का सारांश यह है कि सब तरह से समाधान करके गायत्री पराशक्ति का सार्थक नाम है जो जगन्माता है और जगत रूप से विधमान है उस को वेदमाता या छन्दसांमाता भी कहते हैं । छन्द वेदों का दूसरा नाम है । वेद ज्ञान के भण्डार हैं पराशक्ति ज्ञानस्वरूपा है । उस के लक्षण चैतन्य और सर्वज्ञता है । संवित् उसी का नाम है । सारा ज्ञान उसी का स्वरूप है इच्छा शक्ति ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति वेदों की और विश्व की उत्पादक हैं । इसी लिए पराशक्ति गायत्री का नाम छन्दसांमाता या वेदमाता है ।

प्राणायाम और गायत्री का ध्यान :-

जब पराशक्ति जीवात्मा का स्वरूप धारण करती है तो वह शरीर से आच्छादित रहती है मनुष्यावस्था । में जीवात्मा के तीन शरीर हैं स्थूलशरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर । स्थूल शरीर त्वचा मांस हड्डी :अस्थि : वसा चर्बी इत्यादि का बना हुआ है । पांच कर्मेन्द्रियों : वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ का सामूहिक नाम पंच कर्मेन्द्रिय है । पांच ज्ञानेन्द्रियों श्रोत्र चक्षु घ्राण रसना अ. रत्वक् का सामूहिक नाम पंच ज्ञानेन्द्रिय है । पांच प्राणों : प्राण अपान, उदान व्यान और समान का सामूहिक नाम पंचप्राण है :और अन्त:करण : मन, बुद्धि,

चित्त और अहंकार का सामूहिक नाम अंत:करण है : इन सब को मनुष्य का सूक्ष्म शरीर कहते हैं । स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर व्दारा किये हुवे कर्मों और अनुभवों के संस्कार अंत:करण में : मस्तिष्क में : संगृहित होते है । उन को कारण शरीर कहते हैं । इन तीनों शरीरों का संशोधन करना उपासना का एक आवश्यक अंग है । स्थूल शरीर का संशोधन वस्त्रों का संशोधन घर का संशोधन मृतिका जल इत्यादि से होता है । स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए शुद्ध भोजन और शुद्ध जल: शुद्ध खान पान : भी आवश्यक है । अंत:करण की शुद्धि के लिए भी शुद्ध खान पान आवश्यक हैं । ``अन्न मयं हि सोम्य मन: । मन अर्थात विचारों की शुद्धि भी शुद्ध अन्न पर निर्भर है । श्वास उश्वास के समय जो वायु हम अन्दर ले जाते हैं वह भी शुद्ध होना चाहिए । प्राणों की शुद्धि प्राणायाम से होती है । उपासना के लिए मन का एकाग्र करना आवश्यक है । मन के एकाग्र करने में भी प्राणायाम सहायक होता है । ``चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ``जब तक श्वास उश्वास चलता रहे तब तक मन भी चंचल रहता है । जब वायु निश्चल हो जायं तब मन भी निश्चल हो जाता है । उपासना में मन का एकाग्र करना आवश्यक है इसलिए उपासना के लिए प्राणायाम भी आवश्यक है । ``योग: चित्तवृत्तिनिरोध: ``अर्थात मन को एकाग्र करने का नाम ही योग है । योग शब्द को कई अर्थों में व्यवहृत किया गया है जैसे कर्म योग भक्ति योग ज्ञान योग राजयोग हठ योग लययोग इत्यादि । योग शब्द के अर्थ भी भिन्न भिन्न किये गये है जैसे ``योग: कर्मसु कौशलं ``समत्वं योग उच्यते ``यहां पर प्रस्तुत योग चित्तवृति निरोध है । इस योग को अष्टांग योग कहते है । यह आठ अंग :१: यम :२: नियम :३: आसान :४: प्राणायाम :५: प्रत्याहार :६: धारणा :७: ध्यान और :८: समाधि है । :१: यम इन्द्रिय निग्रह को कहते है जब तक सकल इन्द्रिय :कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय उपासक के काबू में नहीं हों तब तक उस का मन विषयों के पीछे दौडता रहेगा । विषयों से मन को हटाने का नाम यम है । अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इन का सामूहिक नाम यम है ।

:२: शास्त्रानुसार कार्यक्रम बनाकर गुरू प्रदर्शित मार्ग पर चलने का नाम नियम है

शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान यह नियम के अंग है ।३। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए और मन को एकाग्र करने के लिए कई आसन बताये गये है । यह शरीर को फैलाने उठने बैठने की विधियाँ है जैसे पद्मासन वीरासन स्वस्तिकासन सुखासन सिंहासन शीर्षासन इत्यादि । आसनों का अभ्यास करने से कई रोग दूर होते है । शरीर स्वस्थ और बलिष्ट होता है । उपासना के संबंध में वही आसन धारण करना चाहिये जो मन को एकाग्र करने में सहायक हो उस का लक्षण यह है "स्थिर सुखमासनम्" आसन ऐसा धारण करना चाहिए जो स्थिर हो और सुख दायक हो । उपासना के समय उस तरह बैठना चाहिए जिस से शरीर के अंगो और मन को भी कोई तकलीफ या कष्ट नहो । जो ढीला न हो अर्थात जिस तरह बैठ कर शरीर और मन में शिथिलता जाड्यआलस्य निद्रा इत्यादि उत्पन्न नहों । योग का चौथा अंग प्राणायाम है श्वास और प्रश्वास : जो वायु साँस लेते हुए अन्दर जाता है और फिर बाहर आता है उन को क्रमशः श्वास और प्रश्वास अपान और प्राण कहते हैं । इन की गति को नियंत्रित करने का नाम प्राणायाम हैं । इस के कई प्रकार हैं । सन्ध्योपासना और गायत्री जप के संबंध में जिस प्राणायाम का उल्लेख हुआ है वह त्रिपादात्मक है वह तीन पाद पूरक कुम्भक और रेचक है। पहले पाद को पूरक कहते हैं अर्थात मुंह बन्द करके और दाहने हाथ के अंगूठे से नासिका का दक्षिण मार्ग बन्द करके नासिका के वाम मार्ग से श्वास को अन्दर लेजाना उतने समय के अन्दर जितने समय में प्राणायाम मंत्र का एक बार जप हो सके, पूरक कहलाता है । उसी वायु को दाहने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका से नासिका के वाम मार्ग को भी बंद करके अंदर उतनी देर के लिये रोके रखने को कुम्भक कहते हैं जितनी देर में प्राणायाम मंत्र का दो बार जप हो सके । फिर नासिका के दक्षिण मार्ग को खुला छोड कर अन्दर बन्द किये हुए वायु को उतनी देर में धीरे धीरे छोडने को रेचक कहते है जितनी देर में प्राणायाम मंत्र का जप तीन बार हो सके । प्राणायाम मंत्र तो गायत्री मंत्र ही है प्राणायाम के लिए उस के पूर्व में सात व्याहृतियाँ ओंभूः ओंभुवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपःओं सत्यं और गायत्री मंत्र के साथ और अन्त में प्रणव और गायत्री के बाद गायत्रशिर " आपोज्योति रसोमृतं ब्रह्म

भूर्भुव: स्वरोम् ``मिलाने से प्राणायाम मंत्र बनता है । इसी सम्पूर्ण मंत्र का जप प्राणायाम के पूरक कुम्भक रेचक में होना चाहिये । इस प्रकार पुन: पुन: प्राणायाम करने से और पूरकादि में प्राणायाम मंत्र का जप करने से शरीर का अभ्यन्तर संशोधन होता है । प्राणों का संशोधन होता है और मन एकाग्र होता है । इस अभ्यास से उपासक कुम्भक की अवधि बढाते बढाते जाते है । उस कुम्भक में इष्ट देवता का मंत्र जप और उस का ध्यान करते हैं । अथवा निर्विकल्पावस्था का अनुभव करते हैं जिस से वह समाधि निष्ठ हो जाते हैं । वह अवस्था बहुत दुर्लभ है । शैव सम्प्रदायानुसार प्राणायाम के चार पाद हैं । वह रेचक से आरम्भ होता है उस के बाद पूरक उस के बाद कुम्भक उस के बाद ऊर्ध्व रेचक । रेचक :- ``अशुद्ध प्राण वायुं व्दादश प्रणवोच्चार कालं यावद् दक्षिण नासापुटेन बहि: क्षिपेत् `` दक्षिण नासापुट में से प्राण वायु बाहर निकालना उतने समय में जितने में प्रणव का उच्चार बारह बार हो सके रेचक कहलाता है । पूरक:- शुद्धं प्राण वायुं चतुर्विंशति प्रणवोच्चार कालं यावद् वाम नासापुटेन अन्त: प्रवेशयेत् ।। रेचक व्दारा परिपूर्ण अशुद्धवायु को शरीर से निकाल कर शुद्ध प्राणवायु उतने समय में अन्दर लेजाना पूरक कहलाता है जितने समय में प्रणव चौवीस बार उच्चारण हो सके । कुम्भक:- तमेव प्राण वायुं जल भृत कुम्भ वद् अचलस्थितम्‌ षट्त्रिंशत् प्रणवोच्चार कालं यावत् अन्तर् निरोधयेत् । ``पूरक व्दारा अन्दर भरे हुए प्राण वायु को पानी से भरे हुए मटके की तरह अन्दर उतने समय तक बन्द करके रखना कुम्भक कहलाता है जितने में छत्तीस बार प्रणव का उच्चारण हो सके ।।

ऊर्ध्व रेचक:-``तमेव कुम्भकितं वायुंहृत् कंठ तालु भ्रूमध्य भेदन क्रमेण ब्रह्म रन्ध्रान्तम् ऊर्ध्वं रेचयेत् । उसी बन्द किये हुए प्राण वायु को हृत् चक्र : अनाहत् : तालु चक्र : विशुद्ध : भ्रूमध्य चक्र : आज्ञा : को भेदन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र :सहस्त्रार: में पहुँचा कर लय करने का नाम ऊर्ध्व रेचक है । वहाँ पर प्राण को लय करके अपने मन बुद्धि अहंकार को भी विलीन किया जाय । ``एवं हृत् स्थितम् आत्मानं स्फुरत्तारकाकारं हृत् कंठ तालु भ्रूमध्य ब्रह्मरन्ध्र भेदन क्रमेण व्दादशान्ते निनियोज्य मनोहंक्कार बुद्धि : परतत्वे विलाप्य शून्यं शरीरं ध्यायेत इति सूक्ष्म शरीर शुद्धि``

इस प्रकार हृत् चक्र :अनाहत: में अपने प्रकाश विमर्शात्मक स्वरूप को अनुभव करके उस को हृदय कंठ तालु भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्र चक्रों को काटते हुए व्दादशान्त् में पहुँचाकर उस के साथ मिला कर अपने मन बुद्धि और अहंकार को लय किया जाय। इस प्रकार संपूर्ण प्राणायाम करने से सूक्ष्म शरीर की शुद्धि होती है। यदि प्राणायाम के दोनों क्रमों की तुलना की जाय तो शैव सम्प्रदाय का क्रम उत्कृष्ट प्रतीत होता है। अस्तु। दोनों क्रमों का लक्ष्य एक ही है वह यह है कि सूक्ष्म शरीर की शुद्धि हो और मन एकाग्र हो। उपर्युक्त शैव क्रम में चक्रों का उल्लेख हुआ है। उस का ज्ञान गुरू से प्राप्त हो सकता है।

:५: प्रत्याहार योग के उस अंग का नाम है जिस से इन्द्रिय और अन्त:करण विषयों से निवृत्त हो जायें। प्रत्याहार विषयों से चित्त के निवृत्त होने का नाम है और उस साधना का नाम है जिस से चित्त विषयों से निवृत्त हो जाय।

:६: धारणा :- ''देश बन्धश्चित्तस्य धारणा ''मन बुद्धि चित्त अर्थात अन्तकरण को किसी देश में बांधना धारणा है। योग मार्ग के अनुसार मनुष्य शरीर में पराशक्ति चक्र स्थानों में केन्द्रित है। उन केन्द्रों में मन को अचल रूप से ठहराया जाय शक्ति स्वरूप में दृढ किया जाय उस का नाम धारणा है। चक्रों के नाम मूलाधार,स्वाधिष्ठान,मणिपूर,नाभि: अनाहत: हृदय: विशुद्ध : कंठ ,आज्ञा,: भ्रूमध्य: ,सहस्त्रार: शिर : हैं। इन में पराशक्ति केन्द्रित है। यद्यपि वह पराशक्ति सर्व व्यापक है। इन चक्रस्थानों पर शक्ति का अनुभव कैसे किया जाय यह बातें और उनके विषय में धारणा क्रम गुरूजनों से शिक्षा और दीक्षा प्राप्त करने पर विदित होता है।

यह मानसिक धारणायें शरीराभिमाव : मैं शरीर हूँ : यह विचार दूर करने से सफल होती है। शैव सम्प्रदायानुसार शरीराभिमाव को दूर करने के लिए उपासक को कुछ धारणायें करनी पडती हैं। यह धारणायें इस प्रकार बताई गई हैं :अ: पार्थिवी धारणा :- अपने स्थूल शरीर को उपासक एक सूखे वृक्ष जैसा मान ले :आ: आग्नेयी धारणा :- अपने दाहने पावूं के अंगूठे से प्रचंड अग्नि

निकलता हुआ मान कर उस अग्नि की ज्वालाओं से अपने बाह्य और आभ्यन्तर शरीर को जला कर भस्मीभूत मान लें:३: वायवी धारणा :- उस शरीर भस्म को प्रचण्ड वायु से दिशाओं में बिखरता हुआ मान ले । वारुणी धारणा :- अमृतवर्षा से उस स्थान को धुला हुआ मान ले आकाशी धारणा :- ै संविन्मयोऽस्मि, नाहमस्मि न चान्योऽस्ति ध्येयं चात्र न विद्यते । आनन्द पद संलीनं मनः समरसी गतम् ै। फिर यह धारणा धारण करें मैं संवित् शक्तिमात्र हूँ । शरीराभिमानी मैं नहीं हूँ ।न मैं पूर्णाहन्ता परमर्श स्वरूप से अलग हूँ । ध्याता ध्येयऔर ध्यान एक हो गये हैं । इस लिए ध्याता से अलग ध्येय नहीं है आनन्द में मन लीन होकर आनन्द के साथ समरस हो गया हूँ । सकली करण धारणा :- इस प्रकार शरीराहंभाव को नाश करके मैं पराशक्ति स्वरूप हूँ इस भावना का दृढ निश्चय करके एक दिव्य शरीर बना हुआ मान कर जगन्माता के ध्यान के योग्य बन जाय ।

:७: ध्यान :- ``ध्यानं ध्येयाकार:वृत्ति `` जब आसनादि धारणान्त साधना सम्पन्न उपासक उपास्य देवता का ध्यान करने के संमुख हो तो ध्यान धारण करे अर्थात उसकी वृत्ति ध्येयाकार हो जाय यही ध्यान का तात्पर्य है । व्दिज की ध्येय गायत्री है । उस गायत्री का स्वरूप क्या है यह बात समझना आवश्यक है तब ही ध्यान धारण करने वाला अपनी मानसिक वृत्ति तदाकार बनासकता है ।। क्या गायत्री मनुष्याकार देह धारिणी है क्या उस के पाँचमुख हैं दस भुजायें हैं इत्यादि जो मनुष्याकार देवी देवताओं और महागायत्री के ध्यान बताये जाते है क्या वही उनके वास्तविक स्वरूप है । गायत्री के ध्यान को पढा जाय । मुक्ताविद्रुम इत्यादि । तो उसका साधारण शब्दार्थ यही है कि उस के पाँच मुख और दस बाहू है । क्या यही वस्तुस्थिति है । मनुष्य जब आध्यात्मविद्या प्राप्त करने के संमुख होता है तो उस मार्ग में उस की अवस्था एक शिशु की सी होती है । एक शिशु के लिए निर्गुण निराकार अव्यक्त का स्वरूप जानना बहुत कठिन है इसी लिए ऋषियों ने अध्यात्म विद्या में प्रवेश करने वालों के लिए यह साकार ध्यान बताये हैं । जिस प्रकार बच्चों को पढने पर प्रोत्साहित करने के लिए मनोरंजक चित्रों शक्कर से बने हुए खिलोनो व्दारा अक्षर बोध कराया जाता है अक्षर तो

अव्यक्त शब्दों के चिन्ह हैं चित्र खिलौने और लड्डू उन अक्षरों के रूपक हैं । जब यह बच्चे वयस्क हो जाते हैं तो उन खिलौनों चित्रों और लड्डुओं के रूपक को अव्यक्त शब्दों का केवल चिह्नमात्र जानते हैं इसी प्रकार महा गायत्री का ध्यान भी एक रूपक है जिस का उपयोग केवल इतना है कि उपासक जब तक अव्यक्त को अनुभव करने की योग्यता न रखता हो तब तक इस रूपकात्मक स्थूल ध्यान से अपना मन एकाग्र करें । जब वह उपासक इस रूपक को समझने की योग्यता प्राप्त करें तो उस को समझ ले ।

"किं रूपं तत्वतोदेव शब्दराशि कलामयम् । किंवा नवात्म भेदेन भैरवे भैरवाकृतौ । त्रिशिरो भेद भिन्नं वा किंवा शक्ति त्रयात्मकम् इत्यादि यह प्रश्न विचारणीय है कि देवता का तात्त्विक स्वरूप क्या है क्या वह शब्दराशि है या कलामय है क्या वह नवात्मा है क्या उसके तीन सिर हैं क्या उस की तीन शक्तियाँ है इत्यादि इन शंकाओं का समाधान इस प्रकार किया गया है । "यत्किंचित् सकलं रूपं भैरवस्य प्रकीर्तितम् तदसारतया देवि विज्ञेयं शक्रजालवत् । माया स्वप्नोपमं चैव गन्धर्व नगर भ्रमम् । ध्यानार्थं भ्रान्त बुद्धीनां क्रियाडंबर वर्तिनाम् । केवलं वर्णितं पुंसां विकल्पनिहितात्मनाम् ।। तत्वतो न नवात्मासौ शब्दराशिर्न भैरव: । नचासौ त्रिशिरा देवो नच शक्ति त्रयात्मक: ।। अप्रबुध्दमतीनां हि एता बाल विभीषिका ,मातृमोदक वत् सर्वं प्रवृत्त्यर्थम् उदाहृतम् ।" जो कुछ भी सकल रूप देवताका बताया गया है अर्थात देवता का शरीरात्मक स्वरूप बताया गया है । वह वास्तविक स्वरूप देवता का नहीं । जो लोग अज्ञानी हैं जिन की बुद्धि परिपक्व नहीं और जो क्रियाकाण्डमें लगे हैं उन के मन को एकाग्र करने के लिए यह ध्यान बताये गये हैं । मनुष्य का मन विकल्पों में न पड जाय उस से बचने के लिए यह शरीरात्मक स्वरूप बताया गया है । वास्तव में देवता नवात्मा नहीं शब्दराशी नहीं ,न देवता तीन सिर वाला है न तीन शक्ति वाला है इत्यादि : जिन की बुद्धि अभी जागी न हो जिन की बुध्दि परिपक्व नहीं हुई हो उन को इस मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिए आगे चलने पर

प्रोत्साहित करने के लिए यह ध्यान रचे गये हैं । जैसे माता अपने बच्चों को प्रसन्न करने के लिए उन को मोदक बना देती है या डराने के लिए कोई भयप्रद वस्तु बनाती है । इन ध्यानों का प्रयोजन आध्यात्मिक शिशु को रूपक द्वारा प्रवृत्त करना है । यह शरीर और आकृति केवल रूपके हैं । देवता का तात्विक स्वरूप क्या है ``चिद् काल कलनोन्मुक्ता देशोदेशाविशेषिणी । व्यपदेष्टुम् अशक्यासौ अकथ्या परमार्थत: ।। अन्त: स्वानुभवानन्दा, विकल्पोन्मुक्त गोचरा । इन आकृतियों के देश काल नाम दिशा इत्यादि के बन्धन हैं परन्तु वह न तो दिशा से सीमित है न काल से और न नाम इत्यादि से सीमित है वह तो देश काल आकार नाम दिशा इत्यादि बन्धनों से परे है और उस का पारमार्थिक स्वरूप अकथ्य: अनिर्वचनीय: है वह मन का विषय नही वह स्वात्मानन्द स्वरूप है और स्वानुभवसिद्ध है ।।

``एतादृशस्य सर्वव्यापकस्य नित्यस्य अपरिच्छिन्न स्वभावस्य अभेद विमर्शनमेव ध्यानम् । नतु अव्यापक विनाशि परिच्छिन्न पैवक्त्रादि कल्पनम् ``। ऐसे सर्व व्यापक नित्य और अपरिच्छिन्न स्वभाव वाले देवता के साथ उपासक का तादात्म्य परामर्श करना ही ध्यान का तात्पर्य है ध्यान का प्रयोजन यह नहीं कि सदैव देवता के शरीर मुखों और बाहुओं का स्मरण करते रहें आध्यात्मिक मार्ग में शैशवावस्था से आगे बढें ही नही । यह बात युक्ति युक्त नहीं ।। ध्यानं या निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया । नतु ध्यानं शरीरस्य मुख हस्तादि कल्पनम् ``ध्यान का लक्ष्य यह है कि निराकार और निराश्रय तत्त्व पर उपासक की बुद्धि निश्चल रूप से निष्ट हो शरीर मुख और हाथ इत्यादि की कल्पना करते रहना ध्यान का लक्ष्य नहीं । इस दृष्टि से महागायत्री के शास्त्रोक्त ध्यान के तत्त्व को समझ लेना आवश्यक है । महागायत्री का शास्त्रोक्त ध्यान यह है:-

`` मुक्ता विद्रुम हेम नील धवल च्छायैर्मुखै स्त्रीक्षणै र्युक्ता मिन्दु निबद्ध रत्न मुकुटां तत्वात्म वर्णात्मिकाम् । गायत्री वरदां भयांकुश करीं शूलं : शम्भं : कपालं गुणं । शंख चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ``।

शब्दार्थ और भावार्थ को स्पष्ट करने के लिए इस पद्य को गद्य में लिखा जाता है। गायत्री भजे वीवृती गायत्री तत्वात्म वर्णात्मिकां, वरदा भयांकुशकरी, मुक्ता विद्रुम हेम नील धवल च्छायै मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तां, इन्दु निबद्ध रत्न मुकुटां, शूलं कपालं गुणं शंख चक्र मथु अरविंद युगलं हस्तैर्वहन्तीं ॥

शब्दार्थ:- गायत्री भजे मैं गायत्री का अर्चन सेवन करता हूं वह गायत्री कैसी है मुक्ता :- मोती, विद्रुम :- मोंगरा, हेम :- सोना, नील:- नीला धवल :- श्वेत :सफेद: छायै :- रंगवाले मुखै :- मुखोंसे, त्रीक्षणै :- तीन आंखों से युक्तां :- युक्त वह गायत्री मोती मोंगरा सोने नीले और सफेद रंगो वाले पांच मुख युक्त हैं और तीन नेत्र युक्त हैं। वह गायत्री इन्दु :- चन्द्रमा, निबद्ध बान्धा हुआ रत्नमुकुटां:- रत्नों का बना हुआ मुकुट युक्त हैं। उस गायत्री के सिरपर रत्नों का बना हुआ मुकुट है जिस के साथ चन्द्रमा बन्धा हुआ है। वह गायत्री तत्व स्वरूप है और वर्णस्वरूप है :- तत्वात्म वर्णात्मिकां ॥ वरदाभयांकुशधरी शूलं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविन्द युगलं हस्तेवहन्ती वह गायत्री दस हाथों में दस आयुध वस्तु और मुद्रायें धारण किये है। वह दस वस्तु वर, अभय, अंकुश, शूल: शम्भु: कपाल, गुण, शंख, चक्र और दो कमल हैं॥ शब्दार्थ के अनुसार महागायत्री के पांच मुख है प्रत्येक मुख का रंग अलग अलग है। महागायत्री के तीन नेत्र है दस भुजायें हैं दस हाथों में अलग अलग दस वस्तु हैं। उस के सिर पर रत्नों का मुकुट है जिस में चन्द्रमा भी है। वह तत्वात्मिका और वर्णात्मिका है - यह तो गायत्री का आकृतिमान स्थूल ध्यान है। प्रारम्भिक दशा में जब की उपासक की दशा उपासना मार्ग में शिशु की सी है। यह सकल ध्यान उसको धारण करना चाहिए क्योंकि उस अवस्था में वह निर्गुण अमूर्त अरूप तत्व पर मन नहीं ठहरा सकता। जब उपासक शैशवावस्था से आगे बढे तो उपासक को महागायत्री के सूक्ष्म और पर स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। वास्तव में महागायत्री सूक्ष्म और पर स्वरूपा ही है। यह स्थूल ध्यान रूपकमात्र है। यह स्थूल रूपक सूक्ष्म तत्व को ही प्रकट करता है। इस ध्यान में गायत्री को तत्वात्म वर्णात्मिका बताया गया है। इन दो लक्षणों को समझने से सारे ध्यान का भावार्थ और रहस्य समझ में आवेगा।

भावार्थः- गायत्री को चतुर्विंशत्यक्षरा कहते हैं गायत्री मंत्र के चौबिस अक्षर,वर्ण, है । वह चौबिस अक्षर इस प्रकार है :- :१: तत् :२: स :३: वि :४: तुर् :५: व :६: रे :७: ण्यू :८: भ :९: भ :१०: गो :११: दे :१२: व :१३: स्य :१४: धी :१५: म :१६: हि :१७: धि :१८: यो :१९: यो :२०: नः :२१: प्र :२२: चो :२३: द :२४: यात् । गायत्री को वर्णात्मिका बताकर इस बात की ओर संकेत किया गया है कि गायत्री का वास्तविक ध्यान यही चौबिस वर्णों का मंत्र है । वर्ण शब्द का अर्थ वाच्य और वाचक का पदर्शक है । इस लिए वर्णात्मिका का अर्थ यह भी हो सकता है कि गायत्री वाच्य और वाचक स्वरूपा है । मंत्र का शब्दार्थ और भावार्थ समझ कर गायत्री वर्णात्म स्वरूप समझ में आयेगा । यह चौबीस अक्षर क्या है यह बात ध्याननिर्दिष्ट दूसरे लक्षण से प्रकट होती है । यह वर्ण तत्वात्मक है । गायत्री मंत्र के वर्ण चौबीस है और विश्व भी चौबीस तत्वों के समूह का नाम है । मंत्र के चौबीस अक्षर उन चौबीस तत्वों के द्योतक हैं उन चौबीस तत्वों के नाम:- :१: भूमि ।पृथिवी । :२: सलिल ।जल। :३: वह्नि ।अग्नि। :४: वायु :५: आकाश: ६: गंध :७: रस :८: रूप :९: स्पर्श :१०: शब्द :११: वाक :१२: पाणि:- हाथ :१३: पाद :१४: पायु :१५: उपस्थ :१६: श्रोत्र :१७: त्वक :१८: चक्षु :१९: जिव्हा :२०: घ्राण :२१: मन :२२: बुद्धि :२३: अहंकार :२४: माया ।।

इन में से पहले पांच आकाश,वायु,अग्नि,जल और पृथिवी पांच महाभूत कहलाते है । पृथिवी ठोस पदार्थों का नाम है : यत् काठिन्यं तत् पृथिवी जल सयुक्त पदार्थों का नाम है : यत् द्रवत्वं तद आप: जल पृथिवी तत्व से सूक्ष्म है । जल से सूक्ष्म अग्नि है । अग्नि उन सब पदार्थों का नाम है जिन में दाहक शक्ति प्रकाशक शक्ति पाचक शक्ति इत्यादि है : इन तीनों तत्वों से सूक्ष्म वायु है । उस में संजीवन शोषण शक्ति है । यह भी दृष्टि गोचर तथा स्पर्श गोचर हो सकता है । पांचवा तत्व आकाश है,आकाश खालीपन का नाम है । यह सर्व व्यापक है इसी में सारा दृश्य और अदृश्य सृष्टि स्थित है । यही पंच भूत

समस्त सृष्टि के वाक्‌स्वरूप हैं ।

दूसरे पाँच :ग: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध इन पाँच महाभूतों के गुण हैं । आकाश का गुण शब्द, वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का गुण रूप, जल का गुण रस और पृथिवी का गुण गन्ध है । इन को पंच तन्मात्र कहते हैं । इन पाँच महाभूतों की पाँच तन्मात्रों में स्थावर । अचर। सृष्टि आ जाती है, मनुष्यों में इन पाँच तन्मात्रों को ग्रहण करने के साधन वाक्: बोलने का साधन, जिह्वा: शब्द: पाणि हाथ पकड़ने की शक्ति चलने की शक्ति पायु और उपस्थ : विसर्ग और आनंद के साधन है इन को पंच कर्मेन्द्रिय कहते हैं । इन्हीं पाँच तन्मात्रों को जानने के साधन श्रोत्र :कान: शब्द ग्रहण का साधन, त्वक् :त्वचा: स्पर्श ग्रहण का साधन, चक्षु :आँख: रूपग्रहण का साधन हैं जिह्वा रस ग्रहण का साधन और घ्राण :नासिका: गन्ध का साधन हैं । उन को पंच ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं । इस प्रकार इन बीस तत्वों को सम्पूर्ण चराचर जगत का स्वरूप कहा जाता है । यह तो भौतिक सृष्टि है । इस के अतिरिक्त मन है जिस के तीन अंग हैं मन: सोचविचार करने की शक्ति संकल्प साधन बुद्धि निश्चय और विवेक कारिणी शक्ति, अहंकार शरीराभिमानी मैं हूँ और यह मेरा है इत्यादि भावना यही तीन तत्व मानसिक जगत बनाते हैं । इन को अंत:करण कहते हैं । इन चौबीस तत्वों का आधार प्रकृति है । उसी का नाम माया है । शरीराभिमानी जीवात्मा है और प्रकृति का अभिमानी पुरुष है । उसी को मायाभिमानी भी कह सकते हैं । परमात्मा ब्रह्म परमशिव अपनी शक्ति माया रूप से प्रकट होकर माया सहित चौबीस तत्वों व्दारा भासमान होता है । माया शिव की परम स्वातंत्र्य शक्ति है उसकी दुर्घट संपादन शक्ति का नाम माया है । इसी शक्ति को प्रकट करके परमात्मा शिव आवरण धारण करता है । इसी माया शक्ति का चमत्कार है कि समस्त भाव जात :सृष्टि: चिदेकमय होते हुए भी भेद रूप से आभासित होता है । यही सारा विश्व है और महागायत्री परा शक्ति ही इस विश्व के रूप से प्रकट हुई है। इसी लिए ध्यान में महागायत्री को तदात्म बताया गया है । सारा विश्व परा संविद्

महागायत्री का ही स्फार है । यह भावना ही महागायत्री की ध्यान है । यह पराशक्ति विश्वोत्तीर्ण होकर भी विश्वमय है ।

शैव क्रम में विश्व को छत्तीस तत्वात्मक बताया गया है उस से इस भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह चौबीस तत्व इन्ही नामों से शैव क्रम में भी विद्यमान हैं शिव और शक्ति :ब्रह्म और माया का शैवक्रम में सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि कोण से अधिक विवेचन किया गया है । अधिक विवेचन के फल स्वरूप प्रकृति : माया तत्व से ब्रह्म : शिव तक आरोहन क्रम में और ब्रह्म से माया तक अवरोहन या अवतरण क्रम में जो अवस्थायें विद्यमान हैं उन का अलग अलग वर्गीकरण हो जाता है । परन्तु इस चौबीस तत्व में वह अधिक बारह तत्व ब्रह्म और माया में सम्मिलित माने जा सकते है । चौबीस तत्व क्रम में जिस को माया कहते हैं शैव क्रम में चौबीसवें तत्व को प्रकृति कहते हैं । उस से ऊर्ध्व गत बारह तत्वों के नाम यह है : :१: शिव :२: शक्ति :३: सदाशिव :४:ईश्वर :५: शुद्धविद्या :६: माया :७: कला :८: विद्या :९: राग :१०: काल :११: नियति :१२: पुरुष । यह तत्व विवेचन अवस्था विवेचन ही है ।

इस विश्वजननी को जो चराचर स्थूल सूक्ष्म व्यक्त और अव्यक्त रूप से प्रकट हुई है इस ध्यान में इस प्रकार वर्णित किया गया है कि उस के पाँच मुख है । जिन का रंग अलग अलग है तीन नेत्र हैं दस बाहु हाथ है और प्रत्येक हाथ में एक एक वस्तु है : इन कथनों पर गंभीर विचार किया जाय तो विदित होगा कि यह रूपक महागायत्री के तत्वात्मक भाव को ही व्यक्त करता है । मुखों का रंग अलग अलग है :१: एक मुख मुक्ता = मोती के रंग वाला है मोती निर्मल होता है आकाश तत्व भी निर्मल है । इस प्रकार मोती के रंग का मुख आकाश तत्व का प्रतीक है :२: दूसरे मुख को विद्रुम रंग का बताया हैं विद्रुम ।मोंगरा। लाल रंग का होता है । यह अग्नि का रंग है । इस प्रकार दूसरा मुख अग्नि तत्व का प्रतीक है :३: तीसरे मुख को हेम :सोने: के रंग का वर्णित किया गया है हेम पीला होता है पीला रंग पृथिवी तत्व का द्योतक है । इस प्रकार तीसरा मुख पृथिवी तत्व का प्रतीक है :४: चौथा मुख नीले रंग का बताया

गया है । नीला रंग वायु का द्योतक है और चौथा मुख वायु तत्व का प्रतीक है :५: पांचवे मुख का रंग धवल श्वेत बताया गया है । श्वेत रंग पानी का द्योतक है । इस प्रकार पांचवा मुख जल तत्व का प्रतीक है । अतः पांच रंगों वाले पांच मुख इस रहस्य को बतलाते है कि जगन्माता ही पंच महा भूतों के रूप से प्रकट हुई हैं । यह सारा दृश्य जगत जिस को प्रमेय जगत कहते हैं जगन्माता महागायत्री का ही स्वरूप है । दस हाथ और दस वस्तु भी महागायत्री के तत्वात्मिका होने को सिद्ध करते है । आकाश का गुण शब्द, वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का गुण रूप, जल का गुण रस और पृथिवी का गुण गन्ध है । मनुष्यावस्था में इस प्रमेय जगत् से जो पंचभूतात्मक और पंच तन्मात्रात्मक है संपर्क में आने के कारक प्रमाण :साधन: पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय है । शब्द कान से, स्पर्श त्वचा से, रूप चक्षु से, रस जिह्वा से और गन्ध नासिका से अनुभव होता है । यह पांच ज्ञानेन्द्रिय है । इसी प्रमेय जगत से संपर्क के साधन पांच कर्मेन्द्रिय वाक हाथ, पाद, पायु, और उपस्थ भी है । इस पंचवक्त्रा देवी के पांच वाम बाहु पांच कर्मेन्द्रियों के प्रतीक है और पांच दक्षिण बाहु पांच ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक है । अर्थात महागायत्री प्रमाता रूप से प्रमेय जगत के पास इन दस प्रमाणों व्दारा पहुंचती है । वह प्रमाण भी उसी का स्वरूप है । इसी लिए उन प्रमाणों को करणेश्वरी देवियों के नाम से उल्लिखित किया गया है । इस बात का समर्थन तत् तत् बाहु संबद्ध आयुध वस्तु और मुद्रा से होता है ।

:१: आकाश वाचक मुख के साथ एक ज्ञानेन्द्रियवाचक हाथ में शंख है जो हाथ कान का द्योतक है और एक कर्मेन्द्रिय वाचक हाथ से अभय मुद्रा प्रदर्शित है जो कर्मेन्द्रिय वाक् की द्योतक है । शंख शब्दतन्मात्र से संबद्ध है शब्द आकाश तत्त्व से और कान से तथा :जिह्वा :वाक: से भी संबद्ध है । अभय मुद्रा भी शब्द स्वरूप ही है ।

इसी प्रकार शेष मुख शेष बाहु शेष हाथ और शेष उपकरण जो हाथों में है शेष महाभूतों तन्मात्रों ज्ञानेन्द्रियों को प्रकट करते हैं । :२: वायु रूपी

दूसरे मुख से दक्षिण बाहु :ज्ञानेन्द्रिय: त्वचा का संबंध है वायु के तन्मात्र स्पर्श का घोतक आयुध शूल या शम्भ है जो स्पर्श का परिचायक है जो त्वचा का गुण है। और वाम बाहु कर्मेन्द्रिय हाथ का आयुध गुण : रसी है जो हाथों की तरह ही पकड़ने की शक्ति का परिचय देती है।

:३: अग्नि तत्वात्मक मुख के साथ तत्संबद्ध तन्मात्र रूप के ज्ञानेंद्रिय चक्षु का आयुध अंकुश और कर्मेन्द्रिय पाद का आयुध चक्र है अंकुश रूप के कारण चक्षु से संबंध रखता है और चक्र पाद की तरह यत्र तत्र जाने की शक्ति का परिचायक है।

:४: जल तत्वात्मक मुख के साथ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूपी एक एक दक्षिण और वाम हाथ के उपकरण कपाल: पात्र और वर मुद्रा हैं कपाल जिव्हा के गुण आस्वाद और वर मुद्रा पायु :लिंगस्थान: के गुण आनन्द का परिचय देते हैं।

:५: शेष दो हाथों में अरविन्द युगल दो कमल बताये गये हैं। यह पृथ्वी रूपी मुख से संबद्ध ज्ञानेन्द्रिय रूपी हाथ घ्राण।नासिका। और कर्मेन्द्रिय उपस्थ : गुह्य स्थान : पृथ्वी के तन्मात्र गन्ध का उल्लेख करते हैं।

अत: इस रूपक व्दारा महागायत्री का पंच महा भूतात्मिकापंच तन्मात्रात्मिका पंच ज्ञानेन्द्रिय स्वरूपिणी और पंच कर्मेन्द्रिय स्वरूपिणी बताया गया है।

कलायें भी पांच है भूमि से निवृत्ति कला जल से प्रतिष्ठा कला अग्नि से विधाकला संबद्ध है। वायु से शान्ति कला और आकाश से शन्त्यतीता कला। इस प्रकार महागायत्री पंच कलात्मिका भी है।

यह पंच मुखी गायत्री परावस्था में शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध विधा नामक अवस्थाओं में अवतरित हुई। यह पांच मुख इन पांच अवस्थाओं के भी घोतक हैं। फिर माया के स्तर पर यही पराशक्ति पांच शक्तियों काल राग नियति माया और विधा में परिणत हुई। यह पांच मुख उन पांच शक्तियों के भी परिचायक हैं। यह पराशक्ति जगतनिर्माण कार्य में निरन्तर पंचकृत्य में लगी रहती है अर्थात ''सृष्टिस्थिति संहार पिधानानुग्रह कारिणी ''है यही इस के पांच मुख हैं। जिस भी दृष्टि से इस रूपक को परखा जाय तो विदित

होगा कि यह रूपक महागायत्री के विश्वमय होने का परिचय देता है।

महागायत्री को शीफला और इन्दुनिबद्ध रत्न मुकुटा बताया गया है। त्रीशरीमुकुा, महागायत्री के तीन नेत्र हैं ऐसा बताया गया है, यह भी एक रूपक है आध्यात्मिक रहस्य को प्रकट करने की एक कविता शैली है। नेत्रों द्वारा ही प्रमेय जगत देखा जा सकता है। नेत्रों द्वारा ही प्रकाश का अनुभव होता है। स्थूल जगत को दृष्टि गोचर बनाने वाले अग्नि सूर्य और चन्द्रमा हैं। सूर्य और चन्द्रमा में सारा ग्रह मण्डल उपग्रह मण्डल और तारा मण्डल संमिलित है। अग्नि में विद्युत इत्यादि जितने भी साधन प्रकाश उपलब्ध करने के हैं संमिलित हैं। विश्वात्मिका होने से भौतिक जगत के लिए यही सूर्य चन्द्रमा और अग्नि प्रकाश उपलब्ध करते हैं। इस लिए भौतिक स्तर पर पराशक्ति के यही सूर्य चन्द्रमा और अग्नि तीन नेत्र हैं। जब विश्वोत्तीर्ण अनुत्तर दशा से विश्व का स्फार होता है तो उस के प्रकाशक अर्थात विश्व को प्रकट करने वाली शक्तियां इच्छा क्रिया और ज्ञान हैं परावस्था में यही तीन इच्छा क्रिया ज्ञान तीन नेत्र हैं। परमात्मा का बोध उस के तीन गुणों सत् चित और आनन्द से होता है। ~~तीन नेत्र सत् चित् और आनन्द से होता है~~। तीन नेत्र सत् चित् और आनन्द के परिचायक है। विश्व की सृष्टि करने वाली शक्ति को ब्रह्मा, स्थिति करने वाली शक्ति को विष्णु और संहार करने वाली शक्ति को रुद्र कहते हैं। यह तीन शक्तियां भी पराशक्ति के प्रकाशक अंग हैं। इस लिए इनको भी नेत्र कह सकते हैं। मानसिक स्तर पर प्रमेय जगत का ज्ञान प्राप्त करने के साधन मन बुद्धि और अहंकार : अन्तःकरण: हैं यह भी पराम्बिका के तीन नेत्र हैं मन चन्द्रमा के समान, बुद्धि सूर्य के समान और अहंकार अग्नि के समान लक्षण रखते हैं। इसी लिए चन्द्रमा को मन का, सूर्य को बुद्धि का और अग्नि को अहंकार का अधिष्टातृ देवता कहते हैं। यही तीन अन्तःकरण मन रजोगुण बुद्धि सत्वगुण और अहंकार तमोगुण का रूप धारण करके मनुष्य जीवन का सारा व्यवहार सम्पादित करते हैं। इस तरह संवित शक्ति जिस जिस रूप से प्रकाश मान होती है उस का संकेत तीन नेत्रों से किया गया है।

जगन्माता इन्दुनिबद्ध रत्न मुकुटा है। मुकुट शोभा का संकेत है। रत्न जोतिर्मय अर्थात प्रकाश मय होता है चन्द्रमा शान्ति और अह्लाद का चिह्न है। इन्दु निबद्ध रत्न बताने से इस बात का संकेत किया गया है कि जगन्माता की ज्योतिर्मयी शोभा शान्ति और अह्लाद से परिप्लुत है।

मनुष्य जीवन का आधार प्राण और अपान पर है जो वायु श्वास लेते समय अन्दर से बाहर आता है उसको प्राण कहते हैं। वह गर्म होता है। इस लिए उस को सूर्य कहते है। जो अन्दर जाता है उस को अपान कहते हैं वह शीतल होता है इस लिए उस को चन्द्रमा कहते है। यदि अपान वायु अन्दर न जाय तो मनुष्य मृतप्राय होता है यदि रुक जाय तो मर जाता है। यह अपान वायु ज्योतिर्मय है चेतनात्मक है। यही अपान रूपी चन्द्रमा जो प्रकाश स्वरूप और आनन्द स्वरूप है शान्ति और अह्लाद उत्पन्न करने वाला है जगदम्बा की ज्योतिर्मय शोभा को समलंकृत करता है इसी प्रयोजन को इन्दु निबद्ध रत्नमुकुटा शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है। महागायत्री के ध्यान का यही तात्पर्य है तदाकार वृत्ति बनाना ही ध्यान का प्रयोजन है।।

गायत्री मंत्र

मूल मंत्र :- ओं भूर्भुव:स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यधीमहि धियो योन: प्रचोदयात् ओं ।।

पदच्छेद ओं, भू:, भुव: स्व:, तत्, सवितु:, वरेण्यं भर्ग:, देवस्य, धीमहि, धिय:, य:, न:, प्रचोदयात् ओं ।।

पद संबंध :- ओं भू: भुव: स्व: तत् सवितु: देवस्य वरेण्यं भर्ग: धीमहि य: न: धिय: प्रचोदयात् ओं। मूल मंत्र में सन्धि के नियमों के अनुसार स्वरों में परिवर्तन हुआ है जो पद च्छेद और पद संबंध में वर्तमान नही क्योंकि अर्थ बोध के लिए हर एक पद को अलग अलग कर दिया गया है। जप के लिए सही पाठ वही है जो मूल मंत्र में लेखबद्ध है।।

पदार्थः- ओं भूर्भुवः स्वः । ओं : परमात्मा, भूः भूलोक, भुवः भुवः लोक स्वः स्वः लोक । परमात्मा भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक है अर्थात तीनों लोकों में परमात्मा व्याप्त है परमात्मा ही तीनों लोकों भूः भुवः स्वः के रूप से प्रकट हुआ है । ``वसति सर्वस्मिन् वसति यस्मिन् सर्वम् परमात्मा सब में अभेद रूप से स्थित है और सब अभेद रूप से परमात्मा में स्थित है ।।

तत् सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि । तत् :- उस सवितुः सृष्टिकर्ता, देवस्यः देवताका, वरेण्यं स्वाहैं अभिलषणीय उत्कृष्ट, भर्गः तेज, धीमहिः ध्यान करते हैं ।।

यो नः धियो प्रचोदयात् :- यः नः धियः प्रचोदयात् यः : जो, नः हमारी धियः बुद्धियों को, प्रचोदयात् : प्रेरणा करता है । भुवः

संपूर्ण मंत्र का पदार्थ :- परमात्म भूः, स्वः के रूप से प्रकट हुआ है उस सृष्टिकर्ता देवता का उत्कृष्ट तेज हम ध्यान करते हैं । जो हमारी बुद्धियों की प्रेरणा करता है ।

इस मंत्र के अन्त में ओं है उस का अभिप्राय यह है कि जो कुछ ध्यान हम कर रहे है वह परमात्मा का ही स्वरूप है । मंत्र इस लिए इस को कहते हैं ``मननात् त्रायते इति मंत्र शब्दार्थः ``जिस के मनन करने से त्राण अर्थात अभय प्रदान हो उस को मंत्र कहते है । ``मनस्यान्तर्गतं मंत्र मंत्रस्यान्तर्गतं मनः । मनो मंत्र मयं देवं ``मन मंत्र रूप हो जाय और मंत्र मन रूप हो जाय मन और मंत्र देवरूप हो जायें तीनों का तादात्म्य हो जाय यही मंत्र जप का अभिप्राय है । मंत्र के अर्थ का मनन करना ही जप का तात्पर्य है ``जपस्तदर्थ भावनम् `` ।।

भावार्थः- गायत्री मंत्र का उपर्युक्त शब्दार्थ स्पष्ट है । विचारणीय यह बात है कि इस मंत्र के महत्व का क्या रहस्य है । मंत्राः वर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः ``सब मंत्र वर्णमाला के अक्षरों के बने हुए हैं । यह तो इन का बाह्य स्वरूप है, परंतु सब वर्ण : अक्षरः शिव स्वरूप हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि सब मंत्र बाह्य दृष्टि से अक्षरों के बने हैं परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से

मंत्र परमात्मा के परिचायक हैं। गायत्री मंत्र जो वर्णमाला के अक्षरों का ही बना हुआ है वास्तव में परमशिव और पराशक्ति का ही परिचायक है। ``आदिमान्त विहिनास्तु मंत्रा स्यु: शरदभ्रवत्। गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्तं निवेदयेत्।। यदि मंत्र का आदिम और अन्तिम ज्ञान न हो तो मंत्र जप उसी प्रकार निष्फल होगा जिस प्रकार शरत काल का बादल जो बरसता नहीं। गुरू का लक्षण यही है कि वह मंत्र का आदिम और अन्तिम शिष्य को समझावे और अनुभव करावे।। गुरू ही मंत्र रहस्य का बोध करा सकता है। मंत्र का आदिम और अन्तिम अर्थात् मंत्र की उत्पत्ति कहाँ से और किस से हुई और उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है यह बातें गुरू मुख से ही प्राप्त हो सकती हैं। ``गुरूरूपाय: = ``गृणाति उपदिशति तात्विकमर्थमिति गुरू ``तात्विक अर्थ का जो उपदेश करें वह गुरू है। वही गुरू तत्व ज्ञान प्राप्त कराने का उपाय है। गुरू से ही तात्विक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस लिए गायत्री मंत्र के रहस्य की जानकारी सद् गुरू से ही प्राप्त करनी चाहिए।

वर्णमाला में ४६ अक्षर हैं जिन में अ पहला अक्षर है उस `अ `को आदिम कहते हैं और वर्णमाला का अन्तिम अक्षर `ह `है `ह `को अन्तिम कहते हैं। बिन्दु विमर्श शक्ति चित शक्ति का द्योतक है। वही विमर्श शक्ति जगत् प्राण है विमर्श शक्ति मंत्र वीर्य है आदिम `अ`और अन्तिम `ह`को सजीव बनाने के लिए बिन्दु संयुक्त बनाकर आदिम और अन्तिम का स्वरूप अहं बनेगा मंत्र दीक्षा के अवसर पर गुरू शिष्य को मंत्र वीर्य अर्थात आदिम और अन्तिम अर्थात अहं परामर्श का ज्ञान प्रदान करता है और उसका अनुभव कराता है। शरीराभिमानी जीव की अहं मम की भावना संकुचित है विशाल नहीं। वह शरीर से परिमित अभिमान को अहं मानता है। उस परिमित और संकुचित अहं मम प्रवृत्ति का नाम अहंकार है। परिमित अहंकार वृत्ति ग्राह्य नहीं सर्वथा त्याज्य है। इस बिन्दु संयुक्त आदिम अन्तिम अहं का तात्पर्य अपरिमित असंकुचित सर्वव्यापक पूर्ण अहं है और इस अनुभव को पूर्णाहन्ता परामर्श कहते हैं। मंत्रवेत्ता गुरू उपासक को मंत्र के

पूर्णाहन्ता स्वरूप का अनुभव कराता है । गायत्री मंत्र का अभिप्रेत भी पूर्णाहन्ता परामर्श है । यही उस मंत्र का आदिम और अन्तिम है । इस का उदय परमशिव से हुआ है इस का अन्त :चर्मकाष्टा: भी परम शिव है ।

इस मंत्र के आद्य और अन्त में ओंकार प्रणव है । ओं को ओंकार और प्रणव कहते हैं । ``त्रिवर्णं प्रथमोंकारं भूर्भुव: स्वरिति त्रयम् । पाद त्रयं च सावित्र्यास्त्रयोवेदा अदूदुहन् ।। ओंकार त्रिवर्णात्मक है अ उ म् का संयुक्त स्वरूप है । भू: भूव: स्व: तीन लोक हैं । गायत्री के तीन पाद हैं । ओं के तीन वर्ण अ उ म् तीन लोक और गायत्री के तीन पाद वेद त्रयी ऋटक् साम और यजु से निकले हैं । भू: भूव: स्व: को व्याहृतियां भी कहते हैं । गायत्री मंत्र के तीन पाद :चरण: इस प्रकार हैं । :१: तत्सवितुर्वरेण्यं :२: भर्गो देवस्य धीमहि :३: धियो यो न: प्रचोदयात् ।। गायत्री के यह तीन पाद ओंकार के तीन अक्षर और तीन व्याहृतियां तीन वेदों का सार अर्थात तीन वेदों का निष्कर्ष है । ओंकार परम शिव परमात्मा परब्रह्म का नाम है । अव रक्षणेधातु से अवनात् ओं बना है । ``स्व स्वरूप प्रकाशेनैन अवति संसार भयात रक्षति इति ओं `` परमात्मा अपना स्वरूप प्रकट करने से मनुष्य को संसार रूपी भय से रक्षा करता है । इस लिए परमात्मा को ओं कहते हैं । ओं का वर्णात्मक रूप अ उ म् मिलाने से बना है उपासना क्रम के लिए ओं की पांच मात्रायें हैं । अकार उकार मकार अर्ध चन्द्र और बिन्दु । यह पांच मात्रायें पांच देवताओं अर्थात पांच शक्तियों के चिह्न हैं अकारो ब्रह्म इत्युक्त : उकारो विष्णुरूच्यते । मकारो रूद्र दैवत्यो अर्ध चन्द्रस्तथेश्वर : बिन्दु सदाशिवो देव: प्रणव: पंच दैवत: अकार को ब्रह्मा उकार को विष्णु मकार को रूद्र अर्धचन्द्र को ईश्वर और बिन्दु को सदाशिव कहते हैं । ``ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं विष्णुत्वे स्थिति कृत्य य: रूद्रत्वे संहरत्येव । परब्रह्म ब्रह्मा रूपिणी शक्ति व्दारा इस विश्व की सृष्टि करता है, विष्णु रूपिणी शक्ति व्दारा विश्व की स्थिति करता है और रूद्र रूपिणी शक्ति से विश्व का संहार करता है इन शक्तियों का नाम ब्रह्माणी वैष्णवी और

रूद्राणी है । इन तीन शक्तियाँ सृष्टि स्थिति और संहार के अतिरिक्त दो शक्तियाँ तिरोधान और अनुग्रह शक्तियाँ हैं इन का नाम ईश्वर और सदाशिव हैं ओं के ऊपर अर्ध चन्द्राकार लकीर है और म बिन्दु में परिणत होता है । परम शिव जब शक्तिरूप से प्रकट होता है तो पंच कृत्य करता रहता है ।। ओं नमः शिवाय सततं पंच कृत्य विधायिने । चिदानन्दघन स्वात्म परमार्थ वभासिने प्रणव ओं रूपी शिव को नमस्कार करता हूँ वह सदैव पंच कृत्य करता रहता है । वह चित घन और आनन्द घन है और इस पंचकृत्य द्वारा अपने परमार्थ को प्रकट करता है । इस पंचकृत्य का स्वरूप यह है । ``सृष्टि संहार कर्तारं विलय स्थिति कारकम् । अनुग्रह करं देवं प्रणतार्ति विनाशनम् । परम शिव ही सृष्टि संहार विलय स्थिति और अनुग्रह करता है । ~~और~~ उपासक के दुःख को दूर करता है । सृष्टि स्थिति संहार विलय और अनुग्रह इन पांच कर्मों का नाम पंचकृत्य है । शत्व्यवस्था में विश्व को उत्पन्न करना उस की स्थिति करना और उस का संहार करना यह तीन कृत्य हैं । संहार के पश्चात विश्व शक्ति में अन्तर्हित होता है परन्तु बीजरूप से वर्तमान रहता है उस को लय विधान या = तिरोधानावस्था कहते हैं । इस अवस्था में केवल संस्कार रूप से विश्व रहता है इस अवस्था में द्वैत का अर्थात प्रमाता प्रमाण और प्रमेय का केवल आभास मात्र रहता है । इस का नाम ईश्वरावस्था है । तदनन्तर इस क्रम में ऐसी अवस्था आजाती है जिस में प्रमाता प्रमाण और प्रमेय एक रस हो जाते हैं । उन का संस्कार और आभास भी नहीं रहता । भेद प्रथा का अभाव हो जाता है उस को अनुग्रह कहते हैं । उसी का नाम सदाशिवावस्था है । पांचों अवस्थाओं शक्तियों और देवताओं का समावेश प्रणव में है । मनुष्य की परिमित अवस्था में भी यह पंच कृत्य सदैव होता रहता है । जब हम किसी वस्तु या भाव के संमुख होते हैं वह हमारे लिए उस वस्तु की सृष्टि है । जब वह वस्तु या भाव हमारे अन्तःकरण में ठहर जाता है तो वह उसकी स्थिति है । जब हमारा मन उस वस्तु या भाव से उपरत होता है तो हमारे लिए वह उस वस्तु का संहार है । उस से उपरत

होकर भी क्षण मात्र के लिए उस का संस्कार हमारे मन में रहता है वस्तु का आकार समाप्त होकर दीप वत् यह संस्कार रहता है यह उसका तिरोधान है फिर उस का संस्कार भी नहीं रहता यह उस वस्तु का अनुग्रह है । तत् पश्चात् हम दूसरे वस्तु या भाव के संमुख होते हैं फिर दूसरा पंच कृत्य आरंभ होता है । इस प्रकार पंच कृत्य सदैव चलता रहता है । इस पंच कृत्य में अनुग्रहावस्था का अनुभव करना बहुत कठिन है । इस प्रकार प्रणव को पंच दैवत बताया गया है । प्रणव परम शिव का ही एक नाम है वह अपनी इच्छा से इन पांच शक्तियों द्वारा समस्त विश्व की रचना करता है । अपने से पृथक किसी सामग्री की परमात्मा को विश्व निर्माण कार्य में आवश्यकता नहीं । परम शिव ही विश्वोत्तीर्ण होकर अर्थात इस विश्व से परे होकर विश्वमयरूप से अर्थात् विश्व का रूप धारण करके प्रकट होता है ``स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति `` अपनी इच्छा से अपने ही भित्ति आधार पर विश्व को प्रकट करता है । जगत का उदय और प्रलय परमशिव के उन्मेष और निमेष अर्थात संकोच विकास का नाम है ``यस्योन्मेष निमेषाभ्यां जगत: प्रलयोदयौ ``।। ``अदृष्ट विग्रहो देव: भाव गम्यो मनोमय: तस्योंकार:स्मृतो नाम तेनाहूत: प्रसीदति । दिव क्रीडायां दिव द्योतने धातु से देव शब्द बना है इस लिए देव शब्द का अर्थ क्रीडन शील प्रकाश स्वरूप है :द्योतन शील प्रकाश स्वरूप क्रीडन शील परमात्म देव का किसी प्रकार का शरीर अदृश्य है । उस का कोई शरीर नहीं । वह भावना गम्य है मनोमय है । उसका नाम ओंकार है उसी नाम से परमात्मा का स्मरण किया जाय तो आनन्द प्राप्त होता है । `तस्य वाचक: प्रणव: उस ब्रह्म का वाचक प्रणव है,ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म एकाक्षर ओं ही ब्रह्म है । उस की तीन मात्रायें अ उ और बिन्दु है । अ अनुत्तर अर्थात विश्वोत्तीर्णावस्था उ उन्मेष अर्थात विश्वमयावस्था बिन्दु विमर्श शक्ति को मिलाकर ओं बनता है इन तीन के मिलाप से स्पष्ट होता है कि परमात्म देव जिस का नाम ओं है विश्वोत्तीर्ण है विश्वमय है और विमर्श शक्ति के यह दोनों स्वरूप हैं । इस बात का निरूपण किया गया है कि प्रणव किस तरह त्रिकोणात्मक

और पंच कलात्मक है। उपासना मार्ग के रहस्यवेत्ता प्रणव को द्वादश कलात्मक बताते हैं। वह कलायें इस प्रकार बताई जाती है। अ उ म अर्ध चन्द्र बिन्दु निरोधिका नाद नादान्त शक्ति व्यापिनी समना उन्मा ।। प्रणव की यह बारह कलायें गुरू की कृपा से ही अनुभवगम्य हो सकती है।

``एकादश विधो मान्त्रोध्वनि: यथा अकार: उकारो मकारो बिन्दु अर्धचन्द्रो निरोधी नादो नादान्त: शक्ति व्यापिनी समना इति। अत: परं उन्मना ``आत्म तत्वे तत्स्वरूपं विधा तत्वे नियोजयेत्। उन्मना साधु विशेषात्

``यह रहस्य गुरू मुख से ही ज्ञात हो सकता है।

ओं भूर्भुव: स्व: ओं अक्षर शिव ही भूर् भुव: स्व: है अर्थात ब्रह्म ही इन तीन लोकों जिन में सम्पूर्ण विश्व संमिलित है के रूप से प्रकट हुआ है। विश्व को तीन भागों में विभक्त किया गया है। उन ही विभागों के नाम भूलोक भुव: लोक और स्व: लोक है। इन को तीन व्याहृतियाँ भी कहते है। विश्व को सात विभागों में भी विभक्त किया गया है। उन को सात लोक और सात व्याहृतियाँ भी कहते हैं। उनके नाम भू: भुव: स्व: मह: जन: तप: सत्यं है। इन सातों का उल्लेख प्राणायाम मंत्र में है। गायत्री न्यास में भी है। यज्ञ कर्म में भी सातों का नाम आता है। परन्तु गायत्री मंत्र में पहले तीन लोकों का ही उल्लेख है। स्व: लोक के अनुगत चार लोक :मह:, जन: तप:, सत्यं स्व: लोक में ही संमिलित माने जाते हैं। इस प्रकार विश्व के सात विभाग होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व को भु: भुव: स्व: से निरूपित किया जा सकता है।

भू पृथिवी को कहते हैं स्थूल सृष्टि का नाम भूलोक है। भुव: संकल्प जगत का नाम है। भू लोक को मर्त्य लोक भी कहते है। और भुव: को प्रेत लोक या पितृलोक भी कहते हैं। स्व: लोक प्रकाश जगत का नाम है। इस को स्वर्ग और देवलोक भी कहते है। इसी स्व: में मह: जन: तप: और सत्यं शामिल होने के कारण जितनी भी सृष्टि स्थूल और मानसिक जगत के अतिरिक्त है वह स्व: में शामिल है। यह सारा विश्व प्रणवात्मक है अर्थात परमात्मा का ही स्वरूप है।

विकास क्रम में भूः भुवः स्वः तीन अवस्थाओं के नाम हैं। इन का नाम जाग्रत अवस्था स्वप्नावस्था : स्वप्न अवस्था : सुषुप्ति अवस्था है। सम्पूर्ण विश्व में और मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में यह तीन अवस्थायें विद्यमान हैं। जाग्रत अवस्था में जब मनुष्य जगा हुआ होता है मनुष्य के तीनों शरीर : स्थूल, सूक्ष्म, और कारण: स्वेच्छा से काम करते हैं। स्वप्न और सुषुप्ति नीन्द की अवस्थायें हैं। स्वप्न हल्की नींद की अवस्था है। उस अवस्था में स्थूल शरीर और बाह्यइन्द्रियाँ प्रमेय जगत् से विरत होती है। स्थूल शरीर विश्राम में होता है। मन काम में लगा रहता है परन्तु स्वेच्छा से नही संस्कारों से विवश होकर मानसिक जगत में व्यवहार होता रहता है। जागने पर उस मानसिक व्यवहार में से कुछ याद रहता है उस का अधिकांश मनुष्य भूल जाता है। सुषुप्ति गहरी नींद की अवस्था है। उस में मानसिक व्यवहार भी नहीं होता। स्वप्न का अनुभव भी नहीं होता। जब मनुष्य जागता है तो सुषुप्ति अवस्था का इतना अनुभव उसको रहता है कि मैं गहरी नींद में था। ``अहं गाढम् अस्वाप्‌ स्वम् अहं सुखम् अस्वाप्सम् ``मैं गहरी नींद सोया मैं सुख से सोया। भौतिक सृष्टि क्रम में यह तीन अवस्थायें हैं। सारी स्थावर अचर सृष्टि सुषुप्ति की अवस्था है। गाढ निद्रा की अवस्था है। इस स्थावर जगत में यदि किसी पौदे में चेतना आने लगी हो तो वह स्वप्नावस्था का आरम्भ है। पशु पक्षि इत्यादि स्वप्नावस्था में हैं वह प्रकृति से विवश हैं भूक भय इत्यादि उन में है आत्मरक्षा की भावना भी है परन्तु उन में तर्क नही यदि उन में से किसी में विचार स्वतंत्रता विद्यमान हो तो वह जाग्रत अवस्था का आरंभ है। मनुष्य जीवन जाग्रत अवस्था है। इस प्रकार सारा विश्व दृश्य जगत :स्थूल सूक्ष्म और मानसिक : इन तीन अवस्थाओं भूः भुवः स्वः से निरूपित होता है। तीन अवस्थाओं से परे एक अवस्था है जिस को तुरीयावस्था कहते हैं। वह दृष्टा प्रमाता है जो जाग्रतस्वप्न और सुषुप्ति में व्याप्त है। वह प्रणव है। प्रणव अर्थात परमात्मा भूः भुवः स्वः में व्याप्त है। यह तीन अवस्थायें उसी का स्वरूप हैं। यही ओं भूर्भुवः स्वः का तात्पर्य है।

``यत् तावत् इयं लोक कल्पना तत ओंकार श्री परमेश्वर स्व ``यह जो तीन लोकों की कल्पना है वह सब ओंकार अर्थात परमेश्वर ही है । उस से भिन्न नहीं । ``तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति `` उस अप्रत्यक्ष परमात्मा के प्रकाशमान होने से सारा जगत प्रकट होता है उस के प्रकाश से ही सारा विश्व दिखाई देता है । इस प्रकार ओं भू: :भुव: स्व: वाक्य से प्रणव वाचक पराशक्ति महागायत्री की विश्वोत्तीर्णता और विश्वमयता व्यक्त होती है । भू: भुव: स्व: षट्त्रिंशत तत्त्व विभाग में पृथिव्यण्ड प्रकृत्यण्ड और माया अण्ड के द्योतक हैं । यह पराशक्ति के स्वरूप हैं और ओंकार वाचक परमशिव से अभिन्न हैं ।

``तत् सवितुर्वरेण्यं,भर्गो देवस्यधी महि,धियो,योन: प्रचोदयात् ।।
तत् सवितु देवस्य,वरेण्यं भर्ग: धीमहि,
य: न: धिय: प्रचोदयात् ।

तत् शब्द से परमात्मा परब्रह्म स्वरूप निर्दिष्ट है । ओंतत् सत् इति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिवध: स्मृत: `` ब्रह्म के तीन नाम हैं ओं तत् और सत् । जिस प्रकार ओं ब्रह्म वाचक है उसी प्रकार तत् भी ब्रह्म वाचक है । ``तत् सर्वसामान्यं महासत्ता रूपम् ``। जो महा सत्ता सब में सामान्य रूप से ओतप्रोत व्याप्त है उस को तत् कहते हैं । अवाच्यायाप्रमेयाय प्रमा विश्व हेतवे । महासामान्य रूपाय सत्तामात्रैक रूपिणे उस सत्ता को अवाच्य और अप्रमेय कहते हैं । तत् सर्वनाम है । वह प्रत्यक्ष पर लागू नहीं होता परोक्ष पर लागू होता है । इसी प्रकार ब्रह्म सत्ता परोक्ष है । ब्रह्म सत्ता का साक्षात्कार ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों और दृष्यरसिक मन से नही होता । इस लिए उस सत्ता को अवाच्य और अप्रमेय कहते हैं । ``न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक् न मनो ``स्थूल आंख से परमात्म तत्त्व को नही देख सकते न वाणी से उस का निरूपण किया जा सकता है ; मन भी उस के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन नही कर सकता । जब यह सब कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय तथा मन दृश्य प्रमेय से विरत होते हैं तो प्रमाता स्वयंप्रकाशमान होता है । इस लिए उस सत्ता

को प्रमाता कहते हैं । यही विश्व हेतु है अर्थात विश्व की सृष्टि स्थिति संहार विधान और अनुग्रह का कारण है और वह सत्ता महासामान्य रूप से वर्तमान है । वह ब्रह्म चित्त का नाम तत् है केवल सत्तामात्र है । वह सत्ता सामान्य रूप से सर्वत्र विधमान है वह चराचर जगत का और चेतना में व्याप्त है । यहाँ तक उस सत्ता की व्याप्ति है कि दार्शनिक असत् अर्थात न होने की दशा :अभाव : को भी भाव : सत : की ही एक अवस्था मानते हैं । यह विषय बहुत सूक्ष्म है इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महा सत्ता महासामान्य और तत् प्रकाश विमर्शात्मक संवित शक्ति के नाम हैं ।

तत् सवितु : उस सविता का, भौतिक जगत में सविता सूर्य का नाम है उस के कारण से गर्मी और प्रकाश उपलब्ध होते है । वह प्रकाश और गर्मी भौतिक जगत में सृष्टि के सहायक हैं । इस लिए सूर्य का नाम सविता सार्थक है । इस मंत्र में सविता शब्द से बाह्य ग्रह : : मंडल का सूर्य अभिप्रेत नहीं । तत् शब्द सविता के साथ प्रयुक्त होने का फल यह है कि जिस सविता का उल्लेख इस मंत्र में किया गया है वह इन्द्रिय गोचर नहीं परोक्षरूप से वर्तमान है । सविता सृष्टिकर्ता को कहते हैं । ``सर्व भावनां प्रसवितु: इति सविता `` जो सारे दृश्य प्रमेय जगत की सृष्टि करता है उस को सविता कहते हैं । सविता का तात्पर्य विश्व का सृष्टि कर्ता अर्थात प्रकाशविमर्शात्मक चैतन्य शक्ति है उस को चित् सूर्य और बोधादित्य भी कहते है ।

देवस्य देव का, तत् सवितुर्देवस्य उस सविता देवता का : उस सविता को देव संज्ञा दी गई है : देव शब्द दिव धातु से बना है `` दिव द्योतने क्रीडायांच, देव का अर्थ चमकना प्रकाशमान होना और क्रीडा करना है । देव वह है जो द्योतनशील और क्रीडन शील है । जिस का स्वभाव ही प्रकाश और क्रीडा है । प्रकाश ज्ञान और चैतन्य का द्योतक है । उस सविता को देव इस लिए कहा गया है कि चित् सूर्य का स्वभाव ही द्योतन और क्रीडन है वह स्वभाव से ही प्रकाशमान है वह स्वभाव से ही पंचकृत्यक्रीडापर है ! प्रत्यक्ष विश्वरूप से भासमान है । इस विश्व का आविर्भाव और तिरोभाव उस की स्वतंत्र इच्छा से होता है और विश्वनिर्माण कार्य में सृष्टि स्थिति संहार लय और

अनुग्रह क्रीडा में वह सतत लगा हुआ है । यह क्रीडा वह अपनी इच्छा ज्ञान प्रकाश और विमर्श शक्तियों व्दारा करता है । इन्ही शक्तियों में सत् चित और आनन्द का समावेश है ।

उस सविता देवता का वरेरायं भर्ग: वरेरायं वरणाई अभिलषणीयं, चाहने योग्य प्राप्त करने योग्य अभिलाष करने योग्य । यह शब्द वाञ्छनीयता आकर्षिकता और सर्वोत्कृष्टता को प्रकट करता है । ऐसा अभिलषणीय भर्ग: तेज: उस सविता देवता का अभिलषणीय तेज: भर्ग विशेष रूप का तेज है ``तत् भर्ग:'' स्वरूपपरमार्थ तेज: स्वरूप के परमार्थ ज्ञान को भर्ग नामक तेज कहते है । भर्ग इस प्रकार विमर्श का ही नाम है । भर्ग भ र ग का संयुक्त स्वरूप है । ``भ इति भासयति इमान् लोकान् र इति रंजयति इति इमा प्रजा, ग इति गच्छन्ति अमुष्मिन् आगच्छन्ति अस्मात् ``भ उस को कहते है जो इन लोकों को भासमान करता है अर्थात प्रकट करता है । यह जगत की सृष्टि है । र वह है जो इस प्रजा का रंजन करता है अर्थात उस की स्थिति करता है । ग उसको कहते हैं जिस में यह लोक और प्रजा जाते हैं अर्थात संहार लय और अनुग्रह को प्राप्त करते हैं और जिस से यह लोक फिर निकलते हैं । अर्थात पुन: प्रादुर्भाव को प्राप्त करते हैं । इस प्रकार भर्ग से वह तेज अभिप्रेत है जिस से सतत पंच कृत्य होता रहता है ।। ``यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति तत् ब्रह्म ``जिस से यह पंच भूतात्मक जगत उत्पन्न होता है जिस से उत्पन्न होकर जीवित रहता है जिस में विनाश होकर लय होता है वही ब्रह्म है । यही ब्रह्म तेज भौतिक तेज का आधार है । यत् आदित्य गतं तेजो जगत् भासयते खिलम् यत् चन्द्रमसि यत् चाग्नौ तत् तेजो विधि मामकम् । जो तेज सूर्य में है और जगत को भासमान करता है जो तेज चन्द्रमा में है और अग्नि में है वह ब्रह्म तेज ही है ।

मंत्र में सविता और भर्ग की संबंधष्टि बताई गई है अर्थात सविता का तेज बताया गया है । क्या यह संबंध ऐसा है जो किसी स्वामी का उस की

भर्गं का हम ध्यान करते हैं उस की भावना करते है उसको अपनास्वरूप जानते है और उस तेज का अपना स्वरूप होने की भावना से अनुभव करते है। अपने आप को भर्ग रूप जानते हैं और मानते हैं ।।

सर्व व्यापक नित्य अपरिच्छिन्न स्वभाव के साथ स्वयं का अभेद परामर्श अर्थात तन्मयीभाव ही ध्यान का तात्पर्य है। ``अभेद विमर्शनमेवध्यानम् ।। ध्येय अर्थात भर्ग : तेज: के साथ उपासक का तादात्म्य रूप से अभेद परामर्श करना ही ध्यान का प्रयोजन है। इस भावना से हम सविता देवता के भर्ग का ध्यान करते हैं। यही धीमहि शब्द का अर्थ है।

``सोहं चित् मात्रम् एवेति चिन्तनं ध्यानम् उच्यते ``मैं वह परब्रह्म : चिन्मात्र ही हूँ इस प्रकार चिन्तन करने को ध्यान कहते है। इस प्रकार ध्यान करने वाला ध्येयाकार बन जाता है। उपासक महागायत्री का स्वरूप बन जाता है। ``सर्वज्ञ: सर्वकर्ता च व्यापक: परमेश्वर: । स एवाहं शैव धर्मा इति दार्ढ्यात् शिवो भवेत् ।। ``परमेश्वर सर्वज्ञ है सर्व कर्ता है सर्व व्यापक है वही परमेश्वर शिव मैं ही हूँ ऐसा दृढ निश्चय करने से उपासक शिव बनता है। उस के लिए किसी प्रकार का भय या दुःख या संसार या जनन मरण दुःख नही रहता। उपासना का लक्ष्य तो संसृति से मुक्ति प्राप्त करना है इस उपासना क्रम से मुक्ति भी सुलभ बन जाती है।

``स्वतंत्र स्वच्छात्मा स्फुरति सततं चेतन शिव:
परा शक्तिश्चेयं करण सरणि प्रान्तमुदिता ।
तदा भोगैकात्मा स्फुरति च समस्तं जगदिदं
न जाने कुत्रायं ध्वनिरनुपतेत् संसृतिरिति ।।
भ्रम: संसारोयत् कथमिव भयेन् मुक्तिरमुत
स्त्वितीयं या वाञ्छा वत जडधियां प्रसरति ।
त्वदन्यो नास्तीति प्रभवद् अविकल्पा द्युमते :
स्थिरीकारो मोक्षो व्दितय घटना संसृतिरत: ।।

स्वतंत्र और स्वच्छ चैतन्य स्वरूप शिव सदैव स्फुरणशील है क्रियाशील है, पराशक्ति प्रमेय जगत के प्रमाण रूपी करण सरणि के प्रान्त पर उदित है। जब शिव स्फुरणशील होता है और शक्ति उदित होती है तब सारा जगत भोग रूप से अर्थात प्रमेयरूप से भासमान होता है। जब जगत शक्ति और शिव प्रमेय प्रमाण और प्रमाता प्रमातृ स्वरूप ही है प्रमेय और प्रमाण प्रमाता का स्फुरणमात्र हैं जब जगत शिव और पराशक्ति का ही स्वरूप है ऐसी दशा में संसार किस को कहें यह बात समझ में नहीं आती संसार नाम की कोई वस्तु है ही नहीं।

यह संसार भ्रम है भूल है धोका है इस से छुटकारा कैसे हो यदि इस प्रकार की वांच्छा मूढ बुद्धियों को हो तो होने दो। अद्वय और अविकल्प मति प्रबल है पराशक्ति के बिना कुछ भी नहीं। इसी अद्वय मति का स्थिरीकार अर्थात दृढ करना मोक्ष है। द्वैत कल्पना का नाम संसार है। द्वैत कल्पना न रहे तो मुक्ति है। ``मोक्षस्य नैव किंचित् धामास्ति नचापि गमनमन्यत्र। अज्ञान ग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभि व्यक्तता मोक्ष:`` मोक्ष का कोई स्थान नहीं न मोक्ष प्राप्ति के लिए किसी अन्य स्थान या लोक में जाने की आवश्यकता है। अज्ञान ग्रन्थि को काटने और अपनी शक्ति को अभिव्यक्त करने का नाम मोक्ष है।। इस प्रकार धीमहि शब्द का पारमार्थिक अर्थ अद्वय मति का प्रतिपादन है। अज्ञान ग्रन्थि को काट कर अपनी शक्तिको अभिव्यक्तकरना ही इस धीमहि का अभिप्राय है।।

``धियो यो न: प्रचोदयात्`` य: न: धिय: प्रचोदयात्।।
य: जो: तत्सवितुर्देवस्य य: वरेण्यं भर्ग: य: भर्ग: उस सविता देवता का जो अभिलषणीय भर्ग। भर्ग तेज। धीमहि स्मरण करते है। जो प्रकाश विमर्शात्मक भर्ग अर्थात पराशक्ति गायत्री जो परम शिव परात्मा से अभिन्न है पूर्णाहन्ता संवित विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है वह भर्ग न: हमारी धिय: बुद्धियों को अर्थात अन्त: करण और उस के उपकरण इन्द्रिय गण को प्रचोदयात् ``प्रचोदयात प्रचोदयति प्रेरयति ``प्रेरणा करता है जो भर्ग प्रमातृ वर्ग के कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय सहित अन्त: करण को : प्रमाण वर्ग को : प्रमेय तक पहुंचने की प्रेरणा करता है ज्ञान प्राप्त करने

पर और अपना कर्तव्य पालन करने पर प्रेरित करता है सन्मार्ग पर चलाता है आत्म साक्षात्कार कराता है विकास और उन्नति के मार्ग पर चलाता है ।

संक्षेप में गायत्री मंत्र का भावार्थ .

ओं परमात्मा भू: भुव: स्व: सम्पूर्ण विश्व के रूप से भासमान है तत् वह इन्द्रिय गोचर नही वह सविता देव प्रकाश विमर्श स्वरूप क्रीडन शील है सत् चित् आनन्द घन है भर्ग तेज स्वरूप है धीमहि उसी के साथ हम पूर्णाहन्ता परामर्श व्दारा तादात्म्य अर्थात अकृत्रिम तन्मयी भाव अनुभव करते है वह तेज ही पराशक्ति महागायत्री है जो परमशिव परमात्मा से अभिन्न है हम उस महागायत्री से अभिन्न हैं यही दृढ धारणा हम करते है योन: धिय: वही पराशक्ति महा गायत्री हमारी बुद्धियों को प्रचोदयात् विकास और उन्नति के पथ पर चलाती है ।।

पूर्ति विज्ञप्ति

"न गायत्र्या परं जप्यं "गायत्री से बढ कर कोई दूसरा मंत्र जप किये जाने योग्य नही गायत्री से बढकर कोई दूसरा उपास्य देवता नही गायत्री मंत्र सर्वोत्कृष्ट मंत्र है गायत्री देवी ही सर्वोत्कृष्ट उपास्य देवता है यह कथन यथार्थ है । तथापि भिन्न भिन्न संप्रदायों के प्रवर्तक भिन्न भिन्न दर्शनों के प्रतिपादक भिन्न भिन्न उपासना क्रमों के अनुयायी अपने अपने चर्म लक्ष्य को भिन्न भिन्न नाम देते हैं, भिन्न भिन्न शब्दों में उस का वर्णन करते हैं । भौतिक वाद आस्तिकता द्वैतवाद अद्वैतवाद पूर्णाद्वैत विशिष्टा द्वैत इत्यादि अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं । यह सब मत भेद नामभेद अवस्था भेद पर आधारित हैं । शब्द शैली और विचार शैली की भिन्नता, रूचियों की भिन्नता पर आधारित हैं । उन सब का लक्ष्य वास्तविक दृष्टि से एक ही है । "यत्र रुचिस्तत्र विधि यत्र च नास्ति तत्र निषेध: । इति अस्माकं विवेको हृदय परिस्पन्द मात्र शास्त्राणाम् । जो रूचिकर है वही विहित है जो रूचिकर नही वह निषेध है यही कारण शास्त्रों की भिन्नता का है शास्त्र तो हृदय के परिस्पन्दमात्र हैं । "रूचीनां वैचित्र्याद् ऋजु कुटिल

नाना पथजुषां नृणाम् एको गम्यस्त्वम् असि पयसाम् अर्णव इव ``दार्शनिक लोग अपनी रूचियों की भिन्नता और विचित्रता के कारण भिन्न भिन्न मार्गों पर चलते हैं । जिन में से कोई मार्ग टेढा है, कोई सीधा कोई छोटा है कोई लंबा परन्तु उन का लक्ष्य एक ही है । जिस प्रकार नदियां प्राकृतिक अथवा मानव संपादित कारणों से अपना अपना मार्ग गृहण करती हैं किसी नदी का मार्ग लंबा होता है किसी का छोटा । अन्ततो गत्वा वह सब नदियां समुद्र में पहुंचकर समुद्र के जल में एक रूप हो कर लय होती हैं । उसी प्रकार इन सब दर्शनों सम्प्रदायों और मतों का अन्तिम लक्ष्य सत्य साक्षात्कार है ।

``तीर्थ क्रिया व्यसनिनः स्व मनीषिकाभि
२ उत्प्रेक्ष्य तत्वमिति यद् यद् अमी वदन्ति ।
तत् तत्वम् एव भवतोस्ति न किंचिद् अन्यत्
संज्ञासु केवलम् इदं विदुषां विवादः ।।

भिन्न भिन्न मतों और मतान्तरों के रसिक अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अपने अपने क्रिया कलाप में लगे हैं । वह इस पराशक्ति को भिन्न भिन्न नाम देते है । अपनी अपनी बुद्धियों के अनुसार अपने अपने मतों का समर्थन करते हैं । वास्तव में वह सब नाम और मत पराशक्ति को ही वर्णित करते हैं । विद्वानों का यह विवाद केवल नामों पर है तात्विक दृष्टि से नहीं ।

इस लिए नामों के झगडों इतिकर्तव्यता के हेर फेर में न पडकर मौलिक सिद्धान्त और वास्तविकता ही गृहन करने योग्य है । वास्तविक और सैद्धान्तिक दृष्टि से सब मंत्र सब नाम सब ध्यान सब प्रक्रियायें जगत् जननी महा गायत्री पराशक्ति को ही वर्णित करते हैं । सब का अन्तिम लक्ष्य वही परासंवित् शक्ति है । उस के साक्षात्कार का प्रयत्न करना आवश्यक है । यह नामों का झगडा तब तक ही रहेगा जब तक वास्तविकता का तात्विक ज्ञान और अनुभव न हो उपर्यं प्रदर्शित मार्ग सर्वोत्कृष्ट है । उस का अनुसरण करने से और उस का अनुभव करने से ``न गायत्र्या परं जप्यं ``यह कथन प्रमाणित होगा । यह तथ्य अनुभव

से ही सिद्ध हो सकता है ।। इति शिवम् ।।

असतो मा सत् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

सह नौ अवतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।

तेजस्विनौ अधीतम् अस्तु मा विद्विषावहै ।

ओं शान्तिः । ओं शान्तिः । ओं शान्तिः ।।